केरल ज्योति

मई 2025

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

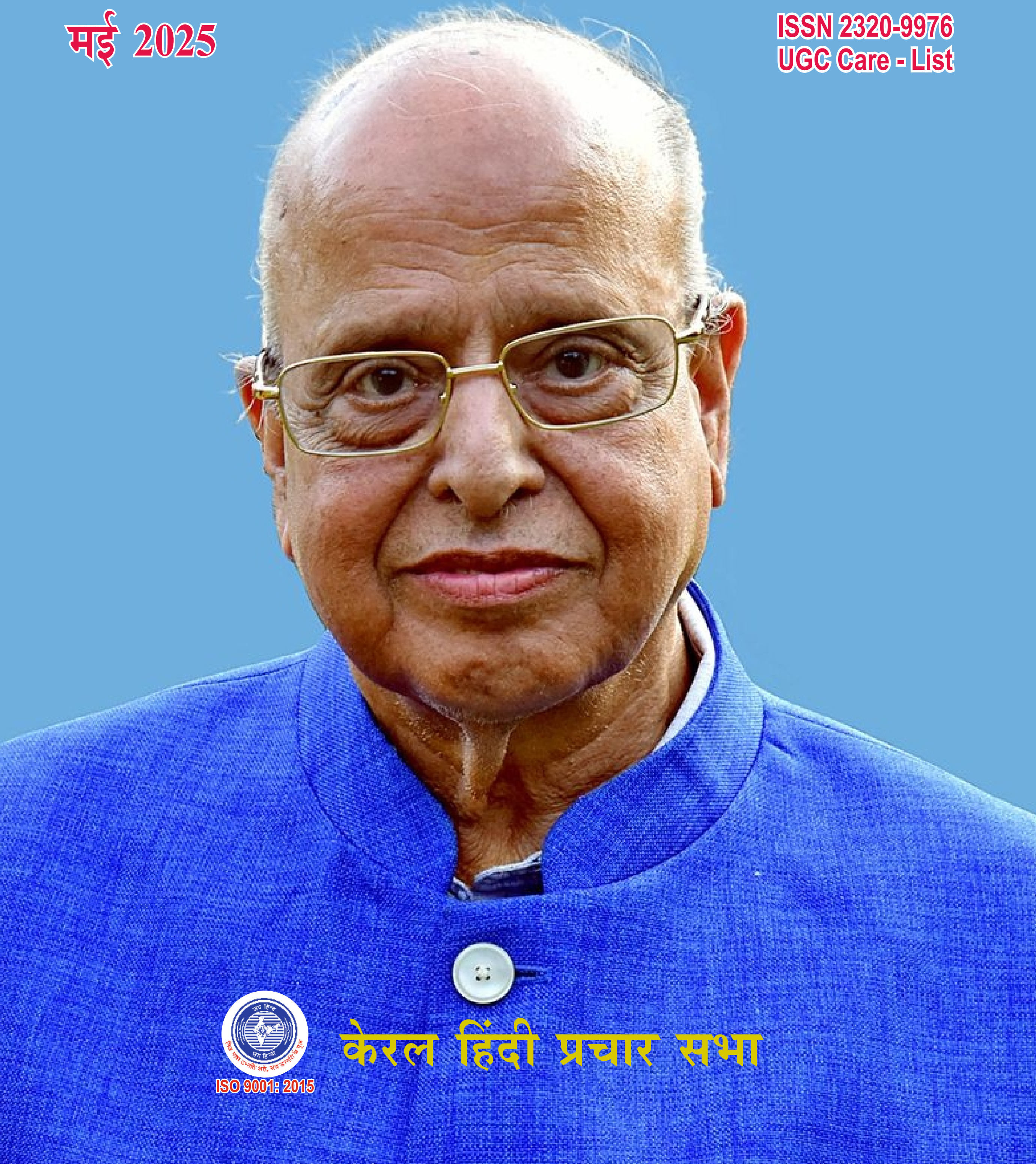

ISO 9001: 2015
केरल हिंदी प्रचार सभा

आचार्य 2009-10 बैच के छात्रों के पूर्व विद्यार्थी संगम समारोह का उद्घाटन सभा के मंत्री कर करे हैं।

पूर्व अध्यापकों का आदर हो रहा है।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ

डॉ के एम मालती

प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन

प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस

डॉ लता पी

डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. एम एस विनयचंद्रन

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सदानन्दन जी

मुरलीधरन पी पी

प्रो रमणी वी एन

चन्द्रिका कुमारी एस

एल्सी सामुवल

आनन्द कुमार आर एल

प्रभन जे एस

डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित वर्तमान समय के कृतिकार विनोद कुमार शुक्ल - **अधिवक्ता (डॉ) मधु बी** 6

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 7

परकाया में पीड़ा की पहचान (ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी सलाम) **डॉ शांती नायर** 12

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 15

समकालीन हिंदी दलित कविता में मुखरित विद्रोह का स्वर ('बस! बहुत हो चुका' के विशेष संदर्भ में) - **डॉ. राजन टी के** 16

बेकसूर आम आदमी का हलफनामा : समकालीन कविता-**अनुज कुमार** 18

भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रीमद् भागवत गीता के कर्मयोग तथा श्रीकृष्ण के जीवन आदर्श की प्रासंगिकता - **डॉ एस रज़िया बेगम** 22

'जन्नत ए बेनज़ीर से जहन्नुम तक के वादी की तब्दीली' : चंद्रकांता की कहानियों के विशेष संदर्भ में - **रिसवाना पी एल / डॉ ए के बिंदु** 26

पितृसत्तात्मक मानसिकता पर प्रहार : शकुंतिका - **डॉ रजनी पी बी** 31

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिला पत्रकारों की भूमिका : एक विश्लेषण - **डॉ पवन कौंडल** 33

दलित स्त्री कविता का प्रतिरोधी स्वर - **डॉ रीनाकुमारी वी एल** 37

नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में गीतांजलि श्री के उपन्यासों का अध्ययन **अमला थॉमस** 40

दया प्रकाश सिंहा के नाटकों में नारी चेतना - **अश्वती चंद्रन** 44

समकालीन स्त्री कविता और सामाजिक स्तर पर नारी मुक्ति के विविध आयाम : कवि कात्यायनी के विशिष्ट संदर्भ में **विजयलक्ष्मी वी /डॉ नवीना जे नरितूक्किल** 47

प्रो जनार्दनन पिल्लैजी के जन्मशती समारोह में प्रो डी तंकप्पन नायर के द्वारा दिए गए वक्तव्य का सार संक्षेप - प्रस्तुति : सुचेता के नायर 50

देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना** 51

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) **मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार** 53

*मुखचित्र : **कीर्तिशेष वैज्ञानिक डॉ कस्तूरीरंगन***

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/-   आजीवन चंदा : रु. 4000/-   वार्षिक चंदा : रु. 400/-

A /c No. 57022786007   IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222/ 9447657301

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
मई 2025

संपादकीय

आम आदमी की अस्मिता के परिरक्षक रचनाकार : विनोद कुमार शुक्ल....!

भारतीय ज्ञानपीठ के 59-वाँ पुरस्कार विजेता हैं रायपुर निवासी सारस्वत साधक श्री विनोदकुमार शुक्ल। समकालीन हिंदी साहित्य में विनोदकुमार जी की रचनाएँ अपनी अलग पहचान की हैं। आधुनिकोत्तर हिंदी साहित्य युग में नये भावबोध से उदित सजन-यथार्थ का संसार इन्होंने रचा है। जादूई-यथार्थवाद के प्रमुख प्रयोक्ताओं में ये अग्रसर हैं।

1 जनवरी 1937 को छत्तीलगढ़ राज्य के जिला 'राजनाँद गाँव' में (पहले मध्यप्रदेश में था) विनोदकुमार शुक्ल का जन्म हुआ था। पिता का नाम शिवगोपाल और माता का नाम रुक्मिणी देवी है। बचपन आर्थिक अभावों में बीता। बाल्यावस्था से ही उन पर साहित्य-संस्कार होते रहे। शिक्षा केवल डिग्रियों तक ही सीमित नहीं रही। जीवन भर पढ़ते रहे, अपने जीवनानुभवों से, अपनी वैचारिक दृष्टि से। सन 1996 में ग्वालियर के कृषि महाविद्यालय में व्याख्याता बन गए। इंदिरागाँधी अंतर्राष्ट्रीय कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर के प्रोफ़सर पद से उन्होंने अवकाश प्राप्त किया।

गजानन माधव मुक्तिबोध के मार्गदर्शन व सहवास के कारण विनोदकुमार जी की कविताएँ सर्वप्रथम छपकर आयी थीं। (श्रीकांतवर्मा के संपादकत्व में दिल्ली से प्रकाशित 'कृति' पत्रिका में)

हरिशंकर परसाई जी और अशोक वाजपेयी जी की प्रेरणा एवं आत्मीय संबंधों के संस्कारों से उनका साहित्यिक जीवन निखरता गया। शुक्लजी उनके आभारी भी हैं। 'अज्ञेय' जी विनोद कुमार शुक्ल के परम प्रिय कवि रहे थे। कवि धूमिल की तरह विनोदकुमार जी की भाषा सपाट बयानी को व्यक्त करती है।

मनुष्य जीवन को उसकी सहजता से व साधारण में असाधारण दृष्टि से उन्होंने मुक्त रूप में प्रस्तुत किया है। प्रकृति-चारुता तथा पारिस्थितिक जैविकता, गोत्र-संस्कृति इनकी रचनाओं के केंद्र में हैं। उन्होंने आम आदमी के जीवनानुभव, व्यवस्था का विरोध, मानवीय मूल्यों की स्थापना, आदिवासी की विपन्नावस्था, बदलती मनोदशाएँ आदि से संबंधित प्रतिक्रियाओं को वैचारिकता के साथ जीवित किया है।

प्रसिद्धि से दूर रहनेवाले कृतिकार हैं विनोद कुमार शुक्लजी। डॉ महेंद्र कुमार रामचंद्र वाढे की मान्यता को उद्धृत करना संगत है - शुक्लजी के संपूर्ण लेखन के अंतराल में एक दीर्घ खामोशी बनी रहती है।

मुक्तिबोध ने 'एक साहित्यिक डायरी' में लिखा है - "जो व्यक्ति साहित्यिक दुनिया से जितनी दूर रहेगा उसमें अच्छा साहित्यिक बनने की संभावना उतनी ही बढ़ जाएगी। साहित्य के लिए साहित्य से निर्वासन अवश्य है।"

विनोद कुमार शुक्ल जी को केरलज्योति परिवार का हार्दिक अभिनंदन!

डॉ एम एस विनयचंद्रन
संपादक

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित वर्तमान समय के कृतिकार विनोद कुमार शुक्ल

अधिवक्ता (डॉ) मधु बी

छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर निवासी विनोदकुमार शुक्ल मुख्य रूप से कवि-कथाकार हैं। आप अपनी तरह के अनूठे रचनाकार हैं। प्रगतिशील वैचारिकता उनके समग्र लेखन में परिरक्षित है। साहित्यिक जीवन को पचास वर्ष से ज़्यादा वय हो गया। अब तो आप अठासी बरस के हैं।

हिंदी साहित्य-क्षेत्र में आपकी विशिष्ट-सृजनात्मकता, अभिव्यक्ति की अनूठी शैली व लोकप्रियता को दृष्टि में रख कर और समग्र योगदान हेतु यह सर्वोच्च पुरस्कार उद्घोषित है।

विनोद कुमार शुक्ल कृषि विभाग से जुड़े हुए एक कृषि-वैज्ञानिक एवं प्रोफ़ेसर रहे हैं। उपन्यासकार और कवि के रूप में वे अपने प्रयोगों के कारण जाने जाते हैं। 'नौकर की कमीज़' तथा 'खिलेगा तो देखेंगे', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' (केंद्र साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त 1999) आदि उनकी बहुचर्चित औपन्यासिक रचनाएँ हैं। बाल-मनोविज्ञान पर आधारित मनोरंजन की कई रचनाएँ प्रकाशित की गई हैं।

"लगभग जयहिंद'(1971), 'वह आदमी चला गया गरम कोट पहनकर विचार की तरह' (1981), 'सबकुछ होना बचा रहेगा' (1982), 'अतिरिक्त नहीं' (2000), 'आकाश धरती को खटखटाता है' (2006) आदि शुक्लजी के चर्चित काव्य-संग्रह हैं। आपकी कविता का सौंदर्य बोध वस्तुतः सामाजिक यथार्थ का सौंदर्य बोध है। उनकी कविता व्यक्ति और समाज के रागात्मक संबंधों की खोज करती है। कविता की यह खोज कवि के जीवनानुभव और प्रत्यक्षीकरण पर

आधारित है। मनुष्यजीवन को उसकी सहजता तथा आत्मीयता के साथ कवि- मन ने स्वीकार किया है। कवि ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ निर्धन, बीमार, बेसहारा व्यक्ति की कोई चिंता न हो। पर यह कल्पना एक दिवास्वप्न से अधिक कुछ भी नहीं है। कवि को स्वीकार करना पडता है कि - "सबसे गरीब आदमी के लिए/सबसे सस्ता डॉक्टर भी/ बहुत महँगा है।"

शुक्लजी की छोटी, पर परिपूर्ण कविता की पंक्तियाँ देखिए -

"हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था
हताशा को जानता था
इसलिए मैं उस व्यक्ति के पास गया
मैं ने हाथ बढ़ाया
मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ
मुझे वह नहीं जानता था
मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था
हम दोनों साथ चले
दोनों एक दूसरे को नहीं जानते थे
साथ चलने को जानते थे।"

मानवीय रागात्मकता पर निबद्ध जीवन-मर्म के रचनाकार एवं अतुल्य प्रतिभावान शुक्लजी को शत-शत प्रणाम !

मंत्री
केरल हिंदी प्रचार सभा

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

तेईसवाँ सर्ग

सामाजिक कुरीतियों से अशांत गुरुदेव

1. क्षुब्ध हुए थे वे तत्कालीन जीवन के रीति-रिवाज़ों से
किया उन्होंने विरोध उन धार्मिक संस्कारों का जिनसे हुई
रुकावट निम्न वर्गों की आध्यात्मिक और लौकिक उन्नति की
और थी अप्राप्य दलित लोगों को सुख-सुविधायें भी।

2. सामाजिक कुरीतियों से अशांत था गुरुदेव का मन
और अशांत होने की प्रवृत्ति होती थी बचपन में ही
काफ़ी जोशीला लड़का थे वे बचपन में नटखट भी थे
कुछ बातों में और उनकी एक खास शरारत का दृष्टांत भी है।

3. फल और मिठाइयाँ जो पूजा के लिए रखते थे घर में
शुरू होने के पहले ही पूजा उन्हें उठाकर खा लेते थे वे
तब ऐसा कहते थे वे कि अगर मैं प्रसन्न हो जाऊं तो
ईश्वर भी प्रसन्न हो जाएँगे तब निरुत्तर होते घर के लोग।

4. अगर रोकने का प्रयास करता कोई तो होता पराजय
और कहीं देखते अस्पृश्यता के शिकार बने निम्न वर्ग के
लोगों को बालक दौड़ जाते उनके निकट और उन्हें
छूने के बाद बिना नहाये घर की रसोई में घुसते फ़ौरन।

5. फिर तुरन्त छू लेते थे स्त्रियों को और ज़्यादा शुद्धता का
आचरण करते पुरुषों को भी और करते थे ऐसा गुरुदेव अपने
बाल्य में और घरवालों को कई बार नहाने की मुश्किल में
डालकर मन बहलाव करने का दृष्टांत भी हैं प्रचलित।

6. श्रीनारायण गुरु के प्रिय शिष्य व कविप्रमुख कुमारनाशान का
मत है कि शायद बचपन की अशांति, जोशीलापन, नटखटपन
निषेधात्मक मनोभाव रूढ़ियों के प्रति और दूसरों को हराने
के सामर्थ्य ने बनाया उन्हें कालांतर में समाज का मार्गदर्शक।

7. विद्यमान था उनमें सौम्यता व शान्तता का उदात्त भाव
और उनके पीछे का साहस भी पहचान गये लोग शीघ्र ही
जब पहली बार उनके मुँह से ईष़्व शिव की बात निकली
तब पुरोहित लोग स्तब्ध हुए और पीछे हट गये निरुत्तर होकर।

8. ईष़्व शिव का प्रतिष्ठा-कर्म हो गया चिरस्मरणीय और
इतिहास में तब से शुरू हो गयी एक अनहोनी और गुरुदेव के
इस महान प्रयास से हो गयी एक नयी आध्यात्मिक क्रांति
और पहुँचाया शिव को अवगणित अवर्ण दलित वर्ग तक।

9. सच्चे मानव प्रेमी और सच्चे सत्यान्वेषी गुरुदेव मानते
नहीं थे वर्णभेद और किया उन्होंने दृढ़ संकल्प तोड़ने का
वर्ण-विधानों को और लिया निर्णय भी कि मनुष्य को
कई स्तरों में बाँटने का वर्ण भेद अंत करने का करें प्रयत्न।

10. एक ज्ञानी थे वे और देते थे दूसरों को आत्मज्ञान और इस
विषय में मान्यता है भारत की थियोसोफिकल सोसाइटी की
कि श्रीनारायण गुरु योग में है पतंजलि और बुद्धि में शंकर
विनम्रता में हैं मोहम्मद और शील में हैं ईसामसीह।

11. बार-बार स्पष्ट किया था गुरुदेव ने निरर्थकता जाति-
व्यवस्था की और अपनी रचना जाति-निर्णय कविता में जाति
निषेध पर दिया संदेश कि मानव की जाति है मानवता
और हो एक जाति एक धर्म और एक ईश्वर मानव का।

12. कहा उन्होंने कि संपूर्ण मानव वर्ग है एक ही जाति का
और जन्म ले रहे हैं ब्राह्मण और चांडाल इसी नरजाति में
और पराशर महर्षि का जन्म धीवर कन्या सत्यवती
से और जन्म व्यास और पराशर का चंडालिका से।

13. इसलिए गुरुदेव की दृष्टि में मानव की जाति है मानवता
जिस तरह गायों की जाति है गोत्व और भ्रम में पड़कर
करते हैं लोग ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य चांडाल जैसी संकल्पना किंतु
गुरुदेव की दृष्टि में है एक जाति एक धर्म एक ईश्वर मनुष्य का।

14. सचमुच सनातन धर्म की घोषणा का पुनः कथन
था गुरुदेव द्वारा किया गया उद्घोष एक जाति एक धर्म
एक ईश्वर मनुष्य का जिसमें संकेत है समभावना की दृष्टि
जिसको पूर्व में किया था संकेत संत कवि कबीर ने।

15. कहा था कबीर ने कि जाति न पूछो साधु की, पूछ
लीजिए उनसे ज्ञान-विषयक बातें, मोल कीजिए तलवार का
पड़े रहने दीजिए म्यान को ऐसा कह के कबीर ने बताया
सबको जाति की निस्सारता और ज्ञान की महिमा को।

16. जीवन पारावार का अपार किनारा ढूँढते सच्चे मानव प्रेमी
गुरुदेव वर्णभेद को कभी न मान सके और उनकी दृष्टि में
एक सुदृढ़ किला है वर्णभेद जिसके भीतर लोगों को
बाँध रखा था कई खानों में और है ज़रूरत सुधारों की।

चौबीसवाँ सर्ग

धर्मोपदेश

1. पड़ी थी गुरुदेव की दृष्टि सब तबकों में समाज के
छूटा नहीं था उनमें से कोई शिष्य या आश्रमवासी भी
इसका है दृष्टांत गुरु-प्रणीत श्रीनारायण धर्म शीर्षक ग्रंथ
जिसका मूल संस्कृत में है जिसमें भरा है धर्मोपदेश।

2. धर्मोपदेश रचित था बोधानन्द जैसे अपने शिष्यों की
शंकानिवृत्ति के रूप में जो विभक्त है दस अध्यायों में
यथा वर्कला वर्णन, शिवगिरि वर्णन, गुरुदेव-वर्णन, धर्म-
अधर्म विवेचन, जाति निरूपण, ब्रह्मचर्य जैसे विषय।

3. प्रतिपादित हैं इस में सत्य अहिंसा आस्तेय शराब -
वर्जन, व्यभिचार, शुद्धि-पंचक, विद्यारंभ, आश्रम धर्म
ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, पंचमहायज्ञ, अंत्येष्टिकर्म, संन्यास
धर्मनिरूपण, प्रसव शुश्रूषा आदि अनेक विषय भी।

4. परिपावन सह्याद्रि के निकट का केरल है पवित्र
कण्व महर्षि के तप से और श्रीजनार्दन मंदिर के
सान्निध्य से और मनोहर प्रकृति-सुषमा से अनुगृहीत
पुण्यभूमि है केरल जहाँ है अति रमणीय प्रदेश वर्कला।

5. आम कटहल अशोक केला सुपारी आदि पेड़ों से
भरे यहाँ सुलभ मिलती है वृक्षों की छाया और इस
प्रदेश के रत्न किरीट की भाँति प्रशोभित शिवगिरि
अनुगृहीत है अक्षरस्वरूपिणी विद्यादेवी सरस्वती से।

6. आम्र वृक्षों की छाया में स्थापित शिवगिरि आश्रम में
विराजित थे एकाग्र चित्त धर्मज्ञ श्रीनारायण गुरु से
और बोधानन्द जैसे शिष्यगण जो अध्यात्म व दर्शन में
तत्पर थे पूछने लगे विनय से शंका-समाधान को गुरुदेव से।

7. हे सर्वज्ञ! हे करुणामय भगवान! समझाइये हमें
धर्म एवं अधर्म के विषय में और धर्म-विद्वेष और
वर्ण-विद्वेष और धर्म की गलत धारणाओं के हेतु
होती है अधर्म की प्रशंसा और करते हैं परधर्म की निंदा।

8. माना जाता है इस संसार में कुछ लोगों को अस्पृश्य और
छुआ-छूत के नाम पर दूर हटाया जाता है कुछ लोगों को
होते हैं इन में कुछ लोग तो दुराचारी भी और कुछ
लोग स्वजाति के गर्व की वजह झगड़ते भी हैं परस्पर।

पच्चीसवाँ सर्ग

शिष्यों की शंकाओं का समाधान

1. सुनी गुरुदेव ने इस प्रकार की शंकायें अनेक ध्यान से और
बताया शिष्यों को स्नेह से कि मैं भी सोचता आ रहा हूँ
इन बातों पर और धर्म ही बढ़ाता है संसार को आगे और
अनाचार से होता है पुण्य का क्षय इसलिए करें सदाचार।

2. दृश्य जगत का सब कुछ है धर्ममय और पैदा होता है
सब कुछ धर्म से और स्थित होता है धर्म में और
होता है विलीन धर्म में सब मानव पशु-पक्षी आदि और
अधिकारी होने से विशेष बुद्धि के बने हैं मानव श्रेष्ठ।

3. करते नहीं हैं अनेक लोग श्रुति व स्मृति में वर्णित
सदाचार का पालन और करते हैं धृष्टतापूर्ण व्यवहार
और करते हैं सज्जनों की निंदा भी सदा और लोगों की
प्रवृत्ति है सत्यविरुद्ध अनैतिक और अनौचित्यपूर्ण भी।

4. जान लीजिए कि मानव के लिए आमतौर पर है एक ही
जाति एक ही धर्म और है ईश्वर भी एक और पहचान है
मनुष्य की मनुष्यत्व ही जैसे कि गाय की पहचान है उसका गोत्व
वैसे ही एक ही जाति है मनुष्य की जिसे दृढ़ कर लें मन में।

5. काम-धंधा भाषा-भेद व देश के नामों पर होते
अभिव्यक्त भिन्न शब्दों को मानते हैं उन्हें मूढ़ लोग जाति
यह संपूर्ण दृश्य जगत होता है एक ही जाति का
भिन्न नामों से जाने जाते हैं देश-काल भेद से।

6. जैसे होता है गाय वानर और कोयल में यथाक्रम
गोत्व वानरत्व पिकत्व होता है वैसे ही मनुष्य में
मनुष्यत्व और जगत के समस्त मनुष्यों की जाति होती है
एक ही और भिन्नता होती नहीं भाषा-देश भेद से।

7. एक शिष्य ने इच्छा की धर्म विषयक ज्ञान पाने की
तो कहा गुरुदेव ने जैसे एक ही जाति है मनुष्य की
वैसे ही एक ही धर्म है मनुष्य के लिए यह सत्य है
मानते हैं हम धर्म सत्यदर्शी महापुरुषों के मत को।

8. बताया गुरुदेव ने सुन लीजिए ध्यान से, हम से
पहले ही कहा गया है कि एक ही धर्म है मनुष्य के लिए
जन्म लिया है धर्मों के आचार्यों ने भिन्न-भिन्न काल में
भिन्न-भिन्न परिवेश में इसलिए होती है भिन्नता उनके ज्ञान में।

9. उद्देश्य तथा लक्ष्य एक रहा सब धर्म-स्थापकों का
इसलिए सबका धर्म एक ही मानने में आपत्ति नहीं कोई भी
कुछ लोग बिना पहचाने हाथी को देखने गये अंधों की भांति
करके अर्थहीन तर्क अपने वाद का करते हैं समर्थन।

10. धर्मों की जीत नहीं होती वाद-विवाद या कायिक बल से
जो करते हैं निंदा अन्य धर्मों की उनका नाश होता है स्वयं
और एक ही है सब धर्मों में प्रतिपादित वस्तु का सार कि
मानवता को एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं सारे धर्म।

11. कोई स्थान नहीं है ऐसे वाद-विवादों को कि धर्म है
भिन्न-भिन्न और गीता का वचन है साक्ष्य रूप में
जो चाहे विश्वास करे जिस धर्म पर भी किन्तु अंत में
करते हैं मुझे प्राप्त जो प्रत्यक्ष प्रमाण है एक-धर्म का।

(क्रमशः)

परकाया में पीड़ा की पहचान

(ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी सलाम)

डॉ शांती नायर

ओमप्रकाश वाल्मीकि की बहुचर्चित कहानी है 'सलाम'। जहाँ कहीं भी दलित साहित्य की कहानी विधा पर चर्चा हुई है, संभवतः हर स्थान पर 'सलाम' कहानी का जिक्र हुआ है। बरसों की भोगी हुई यातनाओं को स्वर देते हुए वैसे तो दलित कहानी उस सामंतवादी वर्चस्व के खिलाफ,वर्ण व्यवस्था के खिलाफ उठ खड़ी होती है जिसने पीढ़ियों से मानव समाज के एक हिस्से को हाशिएकृत अपमानित किया। यह भी सत्य है कि हर कहानी में दलित जीवन संघर्ष से उपजी मुक्ति की चेतना ने नई रचना धर्मिता को अभिव्यक्ति दी है। हर कहानी किसी न किसी आयाम से दलित जीवन की पीड़ा और विडंबनात्मक स्थिति को अभिव्यक्ति देती है परंतु अन्य कई कहानियों से अलग हटकर 'सलाम' कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने लेखन की और सृजन की एक नई तकनीक को स्वीकार किया है। इसी कारण दलित साहित्य के कहानी लेखन के क्षेत्र में इसे अपने ढंग की अलग कहानी कहा जाए तो संभवतः अनुचित न होगा।

'सलाम' में दो मुख्य पात्र आते हैं, जिनमें से एक सवर्ण है और दूसरा दलित। दलित साहित्य की अन्य कहानियों से अलग इन दोनों पात्रों का संबंध व्यतिरेकी न हो करके परिपूरक है। दोनों अभिन्न मित्र हैं।

दलित पात्र हरीश का विवाह कहानी की मुख्य घटना है और हरीश का गांव कहानी की पृष्ठभूमि है। जिसमें कहानी की समस्त घटनाएँ घटित होती हैं। कहानी का सवर्ण पात्र कमल उपाध्याय है, जो अपने आत्मीय मित्र हरीश की शादी में हरीश के गाँव पहुँचता है कमल पूरे उत्साह के साथ हरीश की शादी में शामिल होता है- "कमल उपाध्याय अतिरिक्त उत्साह में हरीश के साथ हर जगह मौजूद था घर परिवार के सदस्य की तरह सारी व्यवस्था कमल उपाध्याय की देखरेख में संपन्न हो रही थी हरीश और कमल के संबंध में कुछ ऐसे थे।"

परंतु गाँव की व्यवस्था में दलितों के प्रति जो भाव है उसकी स्थिति का अंदाज़ा कमल उपाध्याय को शहर से गाँव पहुँचने पर हो ही जाता है। गाँव में आमतौर पर बारात के ठहरने के लिए स्कूल ही ऐसा स्थान होता है जहाँ व्यवस्था की जा सकती है । परंतु दलित हरीश की शादी में स्थिति कुछ और होती है- "बारात के ठहरने के लिए स्कूल का बरामदा ही मिल पाया था। प्रधान जी ने स्कूल खोल देने की हामी तो भर दी थी लेकिन ऐन वक्त पर हेडमास्टर कहीं रिश्तेदारी में चले गए थे। काफी भागदौड़ के बाद भी चाबी नहीं मिली थी। आखिर हारकर बारात को बरामदे में ही रहना पड़ा था। स्कूल में जो हैंडपंप था एक रात पहले ही किसी ने उसका हत्था और वल्व भी खोल लिए थे। पीने के पानी का और कोई इंतजाम वहाँ नहीं था। बड़ी मुश्किल से मिट्टी के दो घड़े ही मिल पाए थे।"

कहानी की एक प्रमुख घटना बारात के दूसरे दिन सुबह घटित होती है। कमल उपाध्याय को सवेरे चाय पीने की आदत थी ।चाय न मिलने पर उसका सर भारी हो जाता था। नई जगह पर इकलौती चाय की दुकान का रास्ता खोजता हुआ कमल उपाध्याय चाय की भट्टी पर पहुँचता है। भट्टी सुलगाकर चाय बनाने के लिए पहले तो चाय वाला तैयार हो जाता है, परंतु जैसे ही उसे पता चलता है कि सामने बैठा व्यक्ति देहरादून से कल चूहडों की बारात में आया है, चाय वाले का रुख बदल जाता है। कहानी में वह चाय वाला जिसने कुछ मिनटों पहले यह कहा था कि "बस अभी हो जागी ....भट्टी सुलग री है बैठ्ठो ...."अब चाय नहीं दे रहा है। कहानी का प्रसंग इस प्रकार बदल जाता है -"चाय वाले ने वहीं से जवाब दिया तुझे यहाँ चाय ना मिलने की है। चाय वाले की आवाज़ में रूखापन था जिसे महसूस करते हुए कमल ने तीखेपन से पूछा लेकिन क्यों अभी थोड़ी देर पहले तो आपने कहा था चाय मिलेगी। चाय वाले के बात करने का ढंग बदल जाता है - वह कठोरता से कहता है - कहा न नहीं मिलेगी चाय।

कमल चाय वाले के व्यवहार से चकित था। फिर

भी नम्रता से बोला 'लेकिन भाई साहब हुआ क्या है क्या मैं पैसे नहीं दूँगा' चायवाला उसके ठीक सामने तन कर खड़ा हो गया। दोनों हाथ कूल्हों पर टिका कर सीना चौड़ा करते हुए बोला जो पैसे शहर में जाकर दिखाणा। दो पैसे हो गए जेब में तो सारी दुनिया को सिर पर छाए घूमो। यह शहर नहीं गाँव है यहाँ चूहडे चमारों को मेरी दुकान में तो चाय ना मिलती कहीं और जाकर पियो। 'यहाँ चाय वाले का व्यवहार और उसके शब्द बताते हैं कि गाँव के समाज में जाति का समीकरण कितना बिगड़ा हुआ है। किन्तु कहानी को जिस प्रकार से रूप दिया गया है, उसमें जाति की मानसिकता को कई आयामों से उभारा गया है।

यहाँ चाय की दुकान पर एक विशेष प्रकार की जंग शुरू हो जाती है। दोनों पक्ष अपनी अपनी बात रखते हैं -एक कहता है चाय नहीं मिल सकती और दूसरा चाय तो मिलनी ही चाहिए। दो प्रतिद्वंदी हैं- चायवाला और कमल उपाध्याय। जंग में बाज़ी जीतने के लिए अपने अपने पास मौजूद उस हथियार को बाहर निकालते हैं जिसका प्रयोग करने के वे आदि होते हैं। या सोचते हैं कि इसका प्रयोग करने से वे बच सकते हैं अथवा बाजी जीत सकते हैं।

यूँ तो कहानी में अद्यन्त कमल उपाध्याय एक सकारात्मक पात्र के रूप में उपस्थित है। परंतु मानसिकता के संदर्भ को उजागर करते हुए इस प्रसंग को भी कहानी में अनदेखा नहीं किया जा सकता कि कमल उपाध्याय चायवाले से आँखें तरेरकर कहता है-'तुम अपनी जात नहीं बताना चाहते हो तो सुनो मेरा नाम कमल उपाध्याय है। उपाध्याय का मतलब जानते ही होंगे या समझाऊँ उपाध्याय यानी ब्राह्मण।' प्रगतिशील चिंतन के तमाम उपक्रमों के बावजूद कमल उपाध्याय की मानसिकता में भी जाति का वह अंश निगूढ रूप से कहीं दबा पड़ा हुआ है । मित्रता या मानवता के प्रति कमल उपाध्याय की ईमानदारी पर बिना प्रश्न चिह्न लगाए ही कहानी इस और भी इशारा कर देती है कि ब्राह्मणत्व कमल उपाध्याय के भीतर कहीं उपस्थित है। और उन परिस्थितियों में जब संकट स्वयं उसके ऊपर आता है तो वह भी उसे उसी तरह बाहर निकाल लेता है जैसे कोई योद्धा अपना सबसे सशक्तअस्त्र बाहर निकाल रहा हो।

कहानी के इस हिस्से में लड़ाई उस चाय वाले से है जिसने कमल उपाध्याय को दलित का समझकर चाय देने से इनकार कर दिया। जिस समाज में हर बाजी को निश्चिंत होकर जीत लेने का या हर प्रतिद्वंदी को आसानी से परास्त कर देने का आखरी दाँव समाज में सर्वोच्च जाति का होने पर आ टिकता है। वहाँ कमल उपाध्याय की आँखें तरेर कर कहना कि मैं ब्राह्मण हूँ यह उसी मानसिकता की ओर इशारा करता है जिसका वह स्वयं भी आदी रहा है।

जीत जाने का या पराजित होने से बचने का मार्ग ब्राह्मण के रूप में उसकी पहचान है। इस पहचान के नकली घोषित कर दिए जाने के साथ ही यहाँ हम देखते हैं कि कमल उपाध्याय कुछ भी नहीं रह जाता। उस समाज में जहाँ जाति का ऊँच-नीच भाव संकल्पना का एक अभिन्न अंग है वहाँ हर ब्राह्मण की तरह या हर उच्च जाति के व्यक्ति की तरह 'मैं उपाध्याय हूँ' का भाव कमल उपाध्याय में भी आत्मविश्वास का संचार करता है- इस बात को यहाँ भी इनकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसी के बल पर वह भारतीय समाज में निश्चिंत घूमता है। ठीक उसी प्रकार की स्थिति है जैसे व्यक्ति के पास अपना पहचान पत्र है तो वह निश्चिंत रह सकता है । निश्चित रूप से घूमता है परंतु विशेष परिस्थितियों में उसका प्रमाण पत्र या पहचान पत्र को जाली घोषित कर दिया जाए तो वह संकटग्रस्त हो जाता है । उसका आत्मविश्वास चूक जाता है-"कमल को लगा उसके चारों ओर अपमान का घना बियाबान जंगल उग आया है। उसका रोम-रोम कांपने लगा। उसने आस पास खड़े लोगों पर निगाह डाली। हिंसक शिकारी तेज नाखूनों से उस पर हमला करने की तैयारी कर रहे थे।"

यहीं पर कहानी अपनी संरचनात्मक वैशिष्ट्य का परिचय देती है। यह कहानी के समय का वह पल है जहाँ एक सवर्ण व्यक्ति, दलित की पीड़ा को अपने भीतर अनिवार्य रूप से अनुभव करता है। इस घटना के पहले भी अभिन्न मित्र हरीश और उसके समाज की पीड़ा को कमल उपाध्याय ने देखा और जाना है। दलित समाज के प्रति कमल उपाध्याय की पूरी हमदर्दी भी है। परंतु चाय की दूकान पर अप्रत्याशित रूप से घिरी संकट की स्थिति में हम देखते हैं कि कमल उपाध्याय को सहानुभूति (केवल सहानुभूति) के उस दायरे से बाहर निकल आना ही पडता है जिसे स्वयं को प्रगतिशील मान कर वह अब तक दलित जाति के सन्दर्भ में पालता रहा।

यहाँ एक समय विशेष में - समय के एक खास

अन्तराल में, कमल उपाध्याय एक दलित है। सहानुभूति के भाव से लैस होने पर भी इस समय विशेष में वह बचकर भाग निकला सकता है अथवा खुद को 'विद्रूॉ' कर सकता है। और अक्सर यही होता भी है। परन्तु कहानी के इस विशेष समय में कमल उपाध्याय के लिए यह सम्भव नहीं है।दलित की पीडा और दम घोट देने वाले व्यवहार को भोग लेना उसके लिए अनिवार्य हो जाता है।

कहानी के आरंभ से ही हम देखते हैं कि "दलित जीवन की स्थितियों और गाँव में उनके द्वारा झेले जानेवाले कष्टों और अपमान को कमल उपाध्याय ने देख लिया था और उसने उसे महसूस भी किया था।" परंतु वह महसूस करना चाय वाले की दुकान पर होने वाली घटना को महसूस करने से भिन्न था।

हरीश कमल उपाध्याय का अभिन्न मित्र था। मित्र के प्रति प्रेम और उसके द्वारा भोगे जाने वाले कष्टों के प्रति कमल उपाध्याय की सहानुभूति की मात्रा शत प्रतिशत थी। यहाँ कमल उपाध्याय और हरीश इस समय से होकर एक साथ गुजर रहे हैं। समय के इस अंतराल में संकट अपमान असुविधा की जिन स्थितियों से वे गुजर रहे थे उन स्थितियों से हरीश चाहकर भी बच नहीं सकता है । कमल उपाध्याय हरीश का मित्र है, इसलिए वह इन स्थितियों में उसके साथ है। लेकिन सच्चाई यह भी है कि कमल उपाध्याय के पास विकल्प है। वह चाहे तो इन परिस्थितियों से अलग हट सकता है। और अगर चाहे तो वह रह भी सकता है। परन्तु हरीश के पास कोई विकल्प नहीं है। यहाँ अपनी जाति को और उसके माध्यम से आ पहुँचने वाली अपमानजनक स्थितियों को हर हालत में झेलना हरीश के लिए अनिवार्यता है। यह अनिवार्यता उत्साह को ठंडा कर देती है जो हरीश नामक दलित पात्र के जीवन को जीने योग्य बना सकती है।

चाय की दुकान पर कमल उपाध्याय इस सत्य से सही सीधा साक्षात्कार करता है जो उसके जीवन में सर्वथा अप्रत्याशित है। जीवन के ये अप्रत्याशित क्षण कमल उपाध्याय को इस बात से पूरी तरह अवगत करा देते हैं कि दलित जीवन में दिल दहला देने वाले एहसास कितने अधिक हैं।

चाय की दुकान पर होने वाले संवाद दलित स्त्री की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं गाँव का पहलवान कहलाने वाला ऊँची जात का व्यक्ति कमल उपाध्याय की ओर मुखातिब होकर के कहता है कि "लौंडिया को इसी दाँव में ब्याह देता तो हम जैसों का भी भला होता" इसमें जो हँसी के साथ जो द्वयार्थक प्रयोग है उसमें हँसी के साथ वहाँ बहुतों की हँसी शामिल हो जाती है।

यहाँ हँसी एकवचन में न होकर बहुवचन में है। यह वही हँसी है जिसे समाज ऐसे सन्दर्भों में अक्सर मिला दिया करता है। यह वही हँसी है जो दलन की प्रक्रिया में कैटलिस्ट का कार्य करती है और उस प्रक्रिया की निरन्तरता को बनाए रखती है। दलितोद्धार के नाम पर स्त्री के उद्धार के नाम पर किए जाने वाले तमाम उपक्रमों के बावजूद ऐसे उत्पीडन का शिकार बनाया जाता है, जिसके निशान भी स्पष्ट दिखाई नहीं पडते। यह हँसी जो मिला दी जा रही है ,वह ब्राह्मणवादी व्यवस्था की मनमानी में यथा प्रस्तावित कहकर जुड़ जाने वाली हँसी है। दलित स्त्री को हमेशा योनि से या सेक्स के साथ जोड़कर लोग हँसी मजाक का पात्र बनाते हैं। लोकगीतों कहावतों में भी इस प्रकार का प्रयोग निर्बाध रूप से होता रहता है ।

दलित स्त्री शारीरिक ही नहीं मानसिक रूप से भी प्रताड़ित की जाती रही है इसका उदाहरण है बहुजुठाई की रस्म भी। विवाह के समय के समस्त स्वप्नों को इस रस्म के माध्यम से ध्वस्त कर दिया जाता है।नियम था कि खेत में पैदा हुए अनाज की पहली भेंट ब्राह्मण को दी जानी चाहिए। ठीक उसी प्रकार यह भी नियम था कि दलित की पत्नी विवाह की पहली रात ठाकुर के साथ ही गुजारेगी । इस रस्म का नाम 'बहु जुठाई' रखा गया। दलित स्त्री की इससे बड़ी व्यथा और क्या हो सकती है? दूसरी दलित पुरुष के पुरुषत्व पर गहरा आघात है कि वह अपनी पत्नी को दूसरे पुरुष की भेंट चढा रहा है। वह आगे कभी भी स्वाभिमान से सिर ऊँचा न कर पाएगा।

स्त्री को भी संपत्ति या सांस्कृतिक चिह्न के रूप में देखने की जो परंपरा या मानसिकता पितृसत्तात्मक समाजों में स्थायित होती रही है। उसमें एक समाज अपने आप को बलवान घोषित करने अथवा वर्चस्व स्थापित कर दिखाने के लिए दूसरे समाज की स्त्री का अपमान करता है। यौन शोषण करता है इस शोषण में वासना पूर्ति की कुत्सित भावना ही नहीं होती वरना दूसरे समाज के गौरव और आत्मसम्मान को रौंदकर अपने को बलशाली साबित

कर लेने के अहंकार की भावना भी रहती है । कहानी में इस संदर्भ में वार्तालाप के दौरान चन्द वाक्यों में इस सत्य को उकेरा गया है .. परंतु कहानी के ये वाक्य संवेदना की जमीन पर गिर कर इस तरह फैल जाते हैं कि वह सदियों के इतिहास और वर्तमान को भी अपने में समेट लेते हैं। उच्च जातियाँ संस्कारों की दुहाई देती है परंतु वास्तविकता का पर्दाफाश इस संदर्भ में होता है।

कहानी के दो प्रसंग परस्पर आमने सामने आकर खड़े हो जाते हैं और एक तीखे व्यंग्य का निर्माण करते हैं। कमल उपाध्याय की माँ निम्न जाति में पैदा हुए हरीश के साथ उसकी दोस्ती के संदर्भ में सशक्त विरोध करती है और उसपर बरस पड़ती है। अनंतर उसे समझाती है - "बेटे इनके संस्कार गलत है।" एक ओर दलितों के संस्कारों को गलत बताने वाली सोच और दूसरी ओर अपने ही गाँव में पली-बढी लड़की की यौनिकता को लेकर छींटाकशी करने और उसमें आनंद लेने वाला सवर्ण समाज। कहानी अनायास ही पाठक के मन पर प्रश्नचिह्न की उपस्थिति कर देती है कि आखिर असभ्य कौन है? वास्तव में गलत संस्कार किसके हैं? इस प्रश्न चिह्न को अचंभे के साथ कमल अपनी संवेदना में महसूस करता है। और वह प्रतिक्रिया करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सलाम-कहानी - ओमप्रकाश वाल्मीकी
2. हिंदी का गद्यसाहित्य - डॉ. रामचंद्र तिवारी

प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा" - किसकी प्रसिद्ध पंक्ति है?
2. 'जंगल तंत्रम' किसका प्रसिद्ध उपन्यास है?
3. सिवा को बखानौ कि बखानौ छत्रसाल कौ - किसकी पंक्ति है?
4. 'पंचवटी' का मलयालम भाषा में अनुवाद किसने किया?
5. 'सुबह रक्त पलाश की' किस विधा की रचना है?
6. 'चुंबन' नाटक के रचयिता कौन है?
7. 'भूतनाथ' किसका उपन्यास है ?
8. जयशंकर प्रसाद की अंतिम कहानी किसे माना जाता है ?
9. हिंदी भाषी क्षेत्र से प्रकाशित प्रथम पत्रिका कौन-सी थी?
10. 'मनबोध मास्टर की डायरी' किसकी रचना है?
11. पद्मावत संजीवनी व्याख्या किसने की?
12. 'आलोक पर्व' किसका प्रसिद्ध निबंध है?
13. 'इक आजु मैं कुंदन बेलि लखि - किसकी पंक्ति है ?
14. 'बिहारी सतसई' का संस्कृत भाषा में 'श्रृंगार सप्तशती' नाम से अनुवाद किसने किया?
15. रास काव्य परंपरा में प्राचीनतम ज्ञात ग्रंथ कौन-सा है?
16. 'ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर' के रचयिता कौन है?
17. तुलसी गंग दुबौ भए सुकविन के सरदार - किसने कहा?
18. 'मिट्टी की सौगंध' दलित उपन्यास के रचयिता कौन हैं?
19. 'दो बैलों की कथा' किसकी कहानी है?
20. विद्यानिवास मिश्र का उपनाम क्या था?

(उत्तर : पृष्ठ 25)

समकालीन हिंदी दलित कविता में मुखरित विद्रोह का स्वर (‘बस! बहुत हो चुका’ के विशेष संदर्भ में)

डॉ. राजन टी के

प्रस्तावना : दलित साहित्य दलित जीवन के दुखद अनुभवों को दर्शाता है, जो इस समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आयामों पर केंद्रित है। दलित लेखक अपनी अभिव्यक्ति के लिए अलग रीति-शास्त्र का प्रयोग करते हैं। दलित सामाज के जीवन में व्याप्त अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा इसमें है। यह समता, बंधुता, भाईचारा की भावना से ओतप्रोत साहित्य भी है।

मूल शब्द :- मुख्यधारा समाज, सामंतवादी शोषण, सौन्दर्य-शास्त्र,काव्यशास्त्रीय मापदंड, मानवता।

दलित साहित्य दलित जीवन के यथार्थ को केंद्र में रख कर लिखा गया साहित्य है। दलित जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं का विचार-विमर्श करने का प्रयास इसमें है। इसके लिए दलित लेखक अपना अलग सौन्दर्यशास्त्र का गठन करते हैं। वे साहित्य के परंपरागत काव्यशास्त्रीय मापदंडों को नकारते हैं। इस नए सौन्दर्यशास्त्र के माध्यम से दलित लेखक अपने समाज की व्यथा -कथा को मुख्यधारा समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं। इसमें समकालीन हिन्दी दलित कविता विशेष भूमिका निभाती है।

दलित कविता में दलित जीवन के कसैले यथार्थ की अभिव्यक्तिमें ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान उल्लेखनीय है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से दलित जीवन के त्रासद अनुभवों को शब्द-बद्ध करते हैं । वर्ण-व्यवस्था, जातीय भेद-भाव , सामंतीय शोषण, उत्पीड़न आदि की अभिव्यक्ति देते सवर्ण सामंतीय व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह उठाते हैं। इनकी कविताओं के बारे में मालती शर्मा का कथन है- “आज शब्द और भाषा अपनी पहचान खो चुके हैं। इन रचनाओं में मुझे प्रतिशब्द की पहचान की आहट मिली है।” उनके बहु-चर्चित काव्य संकलन ‘बस ! बहुत हो चुका’ में दलित जीवन से जुड़े सभी मुद्दों को प्रस्तुत किया है।

दलित रचनाओं मे दलित जीवन के अभावग्रस्त जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करता है। वे सब प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं से दूर रखा गया वर्ग है। अपने बच्चों की भूख या प्यास मिटाने की चीज़ उनके पास नहीं है दलित घरों के भौतिक जीवन की समस्याओं को संकेत करते हुए वाल्मीकि जी लिखते हैं “नहीं मिला दूध उसे/सफेद-काली गाय का /नहीं खाया उसने /दही और मक्खन कभी /नहीं सोया गद्देदार बिस्तर पर। लगातार लड़ा है वह/बेहया मौसम से ।”[1] दलित समाज अपनी इस दयनीय हालत से मुक्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। वे प्रतिकूल वातावरणों से लगातार संघर्ष कर रहे हैं। दलित अपने जीवन में व्याप्त अंधेरे से मुक्त करने की चाह प्रकट करते हैं। वाल्मीकि जी आगे लिखते हैं: “भूखे -प्यासे बच्चे /बाहर आयेंगे एक दिन/बंद अँधेरी कोठरियों से/ कच्ची माटी की गंध /साँसों में भरकर !”[2]

अपने इस अभावग्रस्त जीवन में भी दलित समाज आत्मसम्मान के साथ जीते हैं। वे कमरतोड़ मेहनत करते हैं। अपने खून को पसीना करके जीना चाहते हैं। उनके बच्चे भूख से पीड़ित हैं। उनके घरों में भूख मिटाने का कोई संसाधन नहीं है। लेकिन वे दूसरों को शोषण कर के जीने को तैयार नहीं है। वे आत्मसम्मान के साथ जीना चाहते हैं। अपनी कविता ‘वे भूखे हैं’ में वाल्मीकि जी लिखते हैं-“वे भूखे हैं/पर आत्मा का माँस नहीं खाते / प्यासे हैं/पर लहू नहीं पीते /नंगे हैं /पर दूसरों को नंगा नहीं करते /उनके सिर पर छत नहीं है /पर दूसरों के लिए / छत बनाते हैं।”[3]

दलित सामज को सदियों से शोषण किया जाता रहा है। सवर्ण-जमींदार वर्ग उनका हर तरह से शोषण करता है। उन्हें जमींदारों के खेत-खलिहानों में जानवरों की तरह काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। उनके पसीने से सवर्ण-जमींदार वर्ग अमीर बन जाता है। दलित अत्यंत गरीब होते जा रहे हैं। जब उनकी जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो दलितों को पीछे छोड़ दिया जाता है।

दलित जीवन की इस त्रासद स्थिति को ओमप्रकाश वाल्मीकि 'उपोत्पाद' में संकेत करते हैं- "पैदा हुए, वैसे ही/ जैसे जंगल में उगते हैं पेड़/पहाड़ पर पत्थर/नदी में रेत,/ रेत में सीपियाँ/ सीप में मोती। मोती से बनती है माला/ जिसे गले में डालकर / बैठते हैं वे राजसिंहासन पर / और, हम / खो जाते हैं / अंधेरे में वैसे ही / जैसे पैदा हुए / गुमनाम / उपोत्पाद की तरह।"[4] वाल्मीकि जी यह भी कहना चाहते हैं कि इतिहास में इस वर्ग का कोई संकेत भी नहीं किया है। वे उपेक्षित जीवन जीते हैं। दलित समाज की इस यातनापूर्ण जीवन को अपनी कविता में वे प्रस्तुत करते हैं- जब भी देखता हूँ मैं/ झाड़ू या गंदगी से भरी बाल्टी-कनस्तर / किसी हाथ में / मेरी रगों में / दहकने लगते हैं/ यातनाओं के कई हज़ार वर्ष एक साथ / जो फैले हैं इस धरती पर/ ठंडे रेत कणों की तरह।"[5] दलित रचनाकार अपने समाज की ओर होने वाले अन्याय के खिलाफ आवाज बुलंद करते हैं। वे सालों से झलते आए इस अमानवीय शोषण के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया सख्त रू प से व्यक्त करते हैं। वाल्मीकि जी लिखते हैं "गहरी पथरीली नदी में/असंख्य मूक पीड़ाएँ/कसमसा रही हैं/ मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई।"[6]

दलितों के माथे पर जन्म से ही उनकी जाति अंकित कर दी जाती है। वे अपनी मृत्यु तक इससे मुक्त नहीं होते। अपनी मृत्यु के बाद भी, उनकी यह जाति उनको शिकार करना जारी रखेगा । इसलिए दलित मरने के बाद भी स्वर्ग नहीं जाना चाहते । वहाँ भी अपनी जाति के कारण दलितों को अलग-थलग कर दिया जाएगा।'जाति' नामक कविता में भारत में व्याप्त जाति व्यवस्था की इस वास्तविकता को अभिव्यक्त करते हुए इसके खिलाफ विद्रोह उठाने का प्रयास भी ओमप्रकाश वाल्मीकि जी प्रस्तुत करते हैं- "स्वीकार्य नहीं मुझे/जाना,/मृत्यु के बाद/तुम्हारे स्वर्ग में/वहाँ भी तुम पहचानोगे मुझे/मेरी जाति से ही!"[7]

भारत के दलित समाज सदियों से जातिव्यवस्था की जिस कड़वी स्थिति को झेल रहा है उसकी आलोचना करने का प्रयास इसमें है। दलित समाज को मुख्यधारा सामाज से अलग रखने में हिन्दू धर्म का प्रमुख स्थान है। इसमें स्मृति,पुराण, उपनिषद आदि का महत्वपूर्ण स्थान हैं। इसमें पाप-पुण्य, नरक-स्वर्ग, पूर्वजन्म, पुनःजन्म, मोक्ष आदि के बारे में विचार किया गया है। दलित चिंतकों ने संकेत किया है कि हिन्दू संस्कृति एक अभिजन संस्कृति है। हिन्दू धर्म पर आधारित इस अभिजन संस्कृति को दलित साहित्यकार नकारते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी कविता 'शायद आप जानते हो' के जरिए इसका खुला विद्रोह करते हैं। वे लिखते हैं- "तुम्हारे रचे शब्द/ तुम्हें ही डसेंगे साँप बनकर/गंगा किनारे/कोई वट वृक्ष ढूँढ कर/भागवत का पाठ कर लो/ आत्मतुष्टि के लिए/कहीं अकाल मृत्यु के बाद/ भयभीत आत्मा/भटकते -भटकते/ किसी कुत्ते या सूअर की मृतदेह में/प्रवेश न कर जाये/या फिर पुनर्जन्म की लालसा में/ किसी डोम या चूहड़े के घर/ पैदा न हो जाए! चूहड़े या डोम की आत्मा/ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है/ मैं नहीं जानता/शायद आप जानता हो!"[8]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दलित साहित्य में दलित जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्तकरता है। यह साहित्य दलित समाज की सदियों की पीड़ा,यातना,उत्पीड़न आदि को प्रस्तुत करता है। इसमें दलित समाज की ओर होने वाले शोषण, अत्याचार, अन्याय आदि के विरुद्ध दलितों का विद्रोह भी है। यह दलित समाज के आत्मसम्मान बढ़ाने का साहित्य है। जातीय भेद-भाव के स्थान पर समता, बंधुता, भाईचारा का समर्थन करनेवाला साहित्य है। सर्वोपरी यह मानव केंद्रित है। मानवता ही इस साहित्य का मूल विचार हैं।

संदर्भ :

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि - बस !बहुत हो चुका -पृ -20
2. वही-पृ -21
3. वही -पृ -77
4. वही- पृ -18
5. वही -पृ- 79
6. वही -पृ- 80
7. वही -पृ- 78
8. वही -पृ -13

सहायक आचार्य , हिन्दी विभाग
केरल विश्वविद्यालय, कार्यवट्टम कांपस

बेकसूर आम आदमी का हलफनामा : समकालीन कविता

अनुज कुमार

धूमिल ने कभी कविता के हवाले से उस आदमी की बात की थी जो घिरा हुआ है, किन्तु वह अपनी दलील पेश नहीं कर सकता और 'संक्षिप्त एकालाप' करने को बाध्य है। वह पूँजी से घिरा हुआ है और मुक्तिबोध की मानें तो 'पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता।' किन्तु इसी पूंजी से जुड़ी संवेदनहीनता की न केवल शिनाख्त समकालीन कविता करती है बल्कि यह भी तय करता है कि वह अपनी शिनाख्तगी को दर्ज भी करे। अकारण नहीं है कि समकालीन कविता, आधुनिक कविता का विकास है। वह क्रमिक विकास जिसमें नई संवेदना, नई चेतना, नई भाव-भूमि और नए शिल्प में बदलावों को हमने अनुभव किया। समय की नब्ज़ को ठीक-ठीक पकड़ने के लिए यह जरूरी भी था। बल्कि यही सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होता है। मूल्यबोध की ओर इशारा करते हुए कविता के कर्तव्य को धूमिल ने परिभाषित किया था कि कविता/भाषा में/ आदमी होने की तमीज़ है।

समकालीन कविता का समय ऐसा समय रहा है जो इतनी तेज़ी से बदल रहा है कि उसकी थाह लेना मुश्किल प्रतीत होता है। आज का जीवन पहले से कहीं ज़्यादा जटिल होता जा रहा है। समकालीन कविता उनके हक में लिखी जा रही कविताओं का संचयन हैं जिन्हें डेमोक्रेसी के नाम पर बेतरह छला गया है। उन विडंबनाओं, हताशाओं का हलफनामा है जिसके प्रति कोई जिम्मेदार पद पर रहनेवाला जवाबदेह होने से कतराता है। बकौल रघुवीर सहाय- मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव-भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। पुन: मनुष्य की प्रतिभा और सामर्थ्य की अनंत संभावनाओं के द्वार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रयत्न उसके वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है वही समकालीनता का धर्म-निर्वाह करता है। जाहिर है समकालीनता में जिस पक्षधरता की बात उठती है वह उस आन्तरिक बेचैनी और नैतिक ईमानदारी की उपज है जो बद से बदतर हो रही स्थितियों से पनपी है। समकालीन कविता इसी पक्षधरता का लेखा-जोखा है। आम मनुष्य उसके केंद्र में है। राजेश जोशी के शब्दों में कहें तो- "आज की कविता अपने रच-रचाव में एक लोकतान्त्रिक कविता है। इसमें नायक नहीं है चरित है।" आसपास के जीवन के साधारण लोगबाग। यह हमारे समय की विडंबना है कि कविता जब अपनी संरचना और स्वभाव दोनों में सबसे अधिक लोकतान्त्रिक हुई है, राजनीति में लोकतान्त्रिक मूल्यों का सबसे ज्यादा क्षरण हुआ है। मुझे लगता है कि कविता का लोकतान्त्रिक होना अपने निहितार्थ में हमारी इच्छाओं और सपनों का आख्यान है। और अपनी राजनीतिक व्यस्तविकताओं का एक प्रति आख्यान भी। राजेश जोशी जिस विडंबना का हवाला दे रहें हैं, वह इस बात का सूचक है कि आजादी के बाद के मोहभंग के हालातों से होते हुए उदारीकरण के बाद पूँजी की मजबूत पकड़ इस बात का परिचायक है कि आम मनुष्य लगातार यह देखने को बाध्य है कि उसका कोई भविष्य नहीं है। उसके हाथ निराशा लगी, अभी वह नैराश्य को जी रहा है और भविष्य में भी किसी आशा का संचरण होता नहीं दिखता।

एक साधारण मनुष्य अपने परिवार को बहुत महत्व देता है। उसके अस्तित्व का एक बड़ा हिस्सा परिवार के अस्तित्व पर टिका होता है। किसी भी मध्यवर्गीय परिवार में किसी त्योहार या पर्व पर जब लोग जमा होते हैं तो सब की याद आना तय है- "जब चार जन/एक जगह एक साथ होते हैं/तब पाँचवें की याद आती है। एकांत श्रीवास्तव इस कविता के माध्यम से उस यातना को हमारे सामने रखने की कोशिश करते हैं जहां साधारण परिवार के सदस्य अलग-अलग शहरों और महानगरों में रहने को अभिशप्त हैं।"[2]

पंजाब जिसे खुशहाली से जोड़ कर देखा जाता है। ठीक उसी तरह जैसे गुजरात को विकसित राज्य के रूप में दिखाने की कोशिश की जाती है। किन्तु एक समकालीन कवि इस क्लिशे के पीछे के यथार्थ को भलीभाँति समझता है। उसे पता है कि मजदूर चाहे पंजाब का हो या गुजरात का या बिहार या उत्तर-प्रदेश का वह केवल मजदूर है। उसकी और कोई अतिरिक्त पहचान इसके सिवाय नहीं है। अरुण कमल की यह कविता देखिए- "पंजाब तो बहुत खुशहाल है, निहाल सिंह?/सुनते हैं लोग वहाँ दूध और मठ्ठे से तर हैं निहाल सिंह?/फिर तुम क्यों जाते हो पश्चिम बंगाल/ बोलो निहाल सिंह?"[3]

इसी तरह अरुण कमल जी की कविताओं में कई ऐसे कारुणिक दृश्य हमें देखने को मिलते हैं जहां गरीबी, जेंडर आधारित अन्याय दिखाया गया है- "जिन्हें कभी जीवन में मिला नहीं/सुख से भोजन दो जून/वे औरते गातीं हैं छप्पन व्यंजनों के गीत/जिनके बच्चों ने खल्ली भी छुई/ वे माताएँ गाती हैं पढ़े-लिखे दामादों के गीत।"[4]

यह उस अंतहीन आस की दास्तान है जो सदियों

से पूरी नहीं हुई है। लेकिन आस का सिरा ऐसा कि ऐसी स्त्रियाँ फिर भी कुछ अच्छे होने की बाट जोहती रहती हैं।

धर्म के नाम पर चल रहे तमाशों की शिनाख्त भी समकालीन कविता की पहचान है। खोखले धार्मिक स्थापनाओं पर चोट करते हुए चंद्रकांत देवताले कहते हैं- "प्रजातन्त्र की रथयात्रा निकल रही है/औरतों और बच्चों को रौंदा जा रहा है/गुंडों और नोटों की ताकत से हतप्रभ लोग/खामोश खड़े हैं/मैं भी खामोश खड़ा हूँ और कांप रहा हूँ/ और ताप रहा हूँ और बचा रहा हूँ ठिठुरने से अपनी /आत्मा को/ शायद यही है इस वक्त का/सबसे जरूरी काम।"[5]

शायद प्रजातन्त्र के इसी खेल से व्यथित होकर वीरेन डँगवाल ने चेतस होने की गुहार लगाई थी- "इतने भले नहीं बन जाना साथी / जितने भले हुआ करते हैं सरकस के हाथी/गदहा बनने में लगा दी अपनी सारी कूवत सारी प्रतिभा/किसी से कुछ लिया नहीं न किसी को कुछ दिया /ऐसा भी जिया जीवन तो क्या जिया?"[6]

ज्ञानेंद्रपति अपनी कविता 'पुरीः मंदिर' में बच्चों के हवाले से ईश्वर की सत्ता को ललकारते हुए उस मनुष्य के पक्ष में खड़े होते दिखाई देते हैं, जो जगन्नाथ मंदिर में लगातार एक के उपर एक हांडी रखकर खाना बनने के बावजूद, मंदिर के बाहर कुछ भी झपट लेने को अभिशप्त हैं - "समुद्र की ध्वनि/नहीं जाती जगन्नाथ के कानों में,/ नहीं जाती उत्तर के दरवाजे के गुम्बद में बसी हुई,/ चमगादड़ों की बस्ती के कानों में/समुद्र की ध्वनि नहीं जाती, मंदिर के आंगन में/जूठा भोजन झपटते बच्चों के कानों में,/जिनके पास केवल मांगने वाले हाथ बचे हैं"(पुरी : मंदिर)

लोकतंत्र का रूप कितना विकृत हुआ है, असद जैदी की कई कविताएँ इसका हवाला हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। आम मनुष्य जिसे उसके वोट के नाम पर छला जाता है। डेमोक्रेसी के नाम पर पूंजीवाद और नव सामंतवाद का जो गठजोड़ मजबूत हो रहा है वहाँ एक अदने से व्यक्ति के वोट का क्या महत्व? जाहिर है कुछ भी नहीं- "मेरा वोट लिए बग़ैर भी/आप मेरे सांसद हैं/आपको वोट दिए बग़ैर भी /मैं आपकी रिआया हूँ"[7]

इस कविता में एक आम नागरिक की असहायता लगभग अस्सी फीसद जनता की असहायता से मेल खाता है, जहाँ उनके होने का कोई मतलब नहीं। वोट तो दूर की कौड़ी हुई। इसी तरह आज का व्यक्तिदबंगों और अत्याचारियों के सामने निस्सहाय है, मंगलेश डबराल अपनी एक कविता अत्याचारी के प्रमाण के ज़रिये उस स्टीरियोटाइप को तोड़ने का प्रयास करते हैं जिसे अपराधिक वृत्ति के लोगों के साथ जोड़कर देखा जाता है। आज का अत्याचारी बहुत साधारण लग सकता है, एक आम मनुष्य की तरह- "उनके नाख़ून या दाँत लम्बे नहीं हैं/आँखे लाल नहीं रहतीं/बल्कि वह मुस्कराता रहता है अक्सर/हमें घर आमंत्रित करता है और हमारी तरफ अपना कोमल हाथ बढाता है/ उसे घोर आश्चर्य है कि लोग उससे डरते हैं"[8]

भूमंडलीकरण ने बाज़ार की भूख को बढ़ावा दिया। इस कथन से किसी को मतभेद नहीं होना चाहिए। कुमार अंबुज की एक कविता है 'बाज़ार'। यह कविता बदलते बाजार को हमारे सामने रखने का प्रयास करती है। जहाँ बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल ने कस्बाई देसी पेठियाँ और हाठों को न जाने कहाँ बिला दिया है। कॉर्पोरेट जगत के मनमाने व्यवहार के सामने सभी विवश हैं- "दिन की आखिरी घड़ी में ग्राहक खोजता हुआ/एक कोने में बैठ वह चमार हास्यास्पद हो गया था/जो बार-बार अपने हाथ में घुमा रहा था पौलिश की डिबिया/और सस्ते बिस्किट-गोलियाँ बेचती उस बुढ़िया ने तो/समेटे ही लिया था अपना खोखा।"[9]

भवानी प्रसाद मिश्र की तरह वीरेन डँगवाल की कविताओं की बड़ी ताकत यह रही कि वे जटिल से जटिल स्थितियों को बहुत साधारण समय लहजे में व्यक्त करते थे। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखते थे कि कथन की गंभीरता कहीं से कम न हो। मसलन भूमंडलीकरण को लेकर ये काव्यांश देखिए- "दुनिया एक गाँव तो बने/ लेकिन सारा गाँव बाहर रहे उस दुनिया के"[10]

इसी बदली हुई नब्ज़ को असद जैदी भी अपनी कविताओं में तलाशते हैं। वे बताते हैं कि अब की लड़ाई पहले हुई लड़ाइयों से थोड़ी अलग है। एक साधारण व्यक्ति अपने पुरखों के इतिहास को ढोने को अभिशप्त है : "लड़ाइयाँ अधूरी रह जाती हैं अक्सर, बाद में पूरी होने के लिए/किसी और युग में किन्हीं और हथियारों से/कई दफे तो वे मैले-कुचले मुर्दे ही उठकर लड़ने लगते हैं फिर से/ जीवितों को ललकारते हुए जो उनसे भी ज़्यादा मृत हैं/ पूछते हैं उनकी टुकड़ी और रिसाले और सरदार का नाम/ या हमदर्द समझकर बताने लगते हैं अब मैं नजफ़गढ़ की तरफ़ जाता हूँ।"[11]

इसी कविता के अंत में वे कहते हैं- "कुछ अपनी बताओ/ क्या अब दुनिया में कहीं भी नहीं है अन्याय/या तुम्हें ही नहीं सूझता उसका कोई उपाय।"[12]

ये नये उपायों की तलाश ही समकालीन कविता की पहचान है। बाज़ार की भूख का आलम यह है कि मंगलेश डबराल कहते हैं कि- "डिब्बों में बंद हो रहा है पूरा देश/पूरा जीवन बिक्री के लिए/एक नई रंगीन किताब है/ जो मेरी कविता के विरोध में आई है/जिसमें छपे सुन्दर चेहरों को कोई कष्ट नहीं।"[13]

लेकिन हकीकत की दुनिया में विज्ञापन और

इडियट बॉक्स के अलावा बाहर भी साधारण मनुष्य को कष्ट हैं। दुखद यह कि इन तकलीफों से निजात पाने के अवसर भी आम व्यक्ति के पास बहुत कम है। भौतिक संसाधनों को ही जीवन का उत्स मान लेना, सफलता का पर्याय मान लेना आज के साधारण से साधारण मनुष्य की नियति है। ध्यान यह देना है कि यह भी उसका चुनाव नहीं है बल्कि उस पर बाजार द्वारा थोपा गया है। इस गिरफ्त से मुक्ति का द्वार केवल एक चेतन मानस है। किन्तु आज के समय में यह एक दुर्लभ स्थिति है। जिसे हम आजादी मान कर चल रहे हैं, वह दरअसल बाजार के समक्ष गुलाम होने की क्रिया मात्र है- "आज़ादी का मतलब है/बाजार से अपनी पसंद की चीज़ चुनने की आज़ादी/ और आपकी पसंद/वे तय करते हैं/जिनके पास उपकरणों का कायाबल/ विज्ञापनों का मायाबल/आपकी आजादी पसंद हैं उन्हें/ चीजों को गुलाम बनाने की आज़ादी।"[14]

और एक गुलाम मनुष्य अपना मुस्तकबिल खुद तय नहीं कर सकता। इतना सामर्थ्य उसमें होता नहीं। इसलिए बाजार हमारी नियति तय करने लगता है। इसलिए राजेश जोशी अपनी कविता वस्तुओं के बारे में कथन में कहते हैं कि अब अपनी जीवन की डोरी हमारे हाथों में नहीं है- "कई बार जब बाज़ार चीजों से लद जाते हैं/समाज में पैदा होने लगते हैं/नये नये उपद्रव/चीज़े एक दिन इतनी ताकतवर हो जाती हैं/कि बनती जाती हैं उनकी स्वतंत्र सत्ता/तब आदमी नहीं, चीजें तय करने लगती हैं/आदमी का भाग्य।"[15]

पूंजीवाद ने भूमंडलीकरण और वैश्विकग्राम का मुलम्मा लगाकर एक औसत मध्य वर्गीय व्यक्ति की यह हालत कर दी है कि वह अपने स्वार्थों के लिए या अपनी कुछ एक सुविधाओं को बचाए भर रखने के लिए समझौतों के बोझ तले दबा हुआ है। मनमोहन की कविता 'डर से सांठ-गांठ' की बानगी देखिये- "हमने किये हैं गुप्त समझौते/ हमने की है गूढ़ संधियाँ/विस्तृत समर्पण पत्र पर हस्ताक्षर करके/हमने उन्हें अनाम बैंकों के गुप्त लॉकरों में जमा कर दिया है/कि अब कोई शर्म नहीं/विस्मरण के दराज में बंद है सारी शर्म"[16]

ऋतुराज ऐसे आदमी को बहुत बेहतर ढंग से जानते हैं जो उम्मीद के आसरे बस जी भर रहा है- "मैं उस आदमी को जानता हूँ/नित्य नई आशा में/वह बिछाता है अपनी चादर/फटे-चीकट दुशाले को ओढ़कर/सर्दी में/कहता है/अगर ईश्वर कहीं होता तो हमारी मदद करता"[17] उस आदमी की हालत इतनी बदतर है कि वह कहता है- "सब ठीक हो जाएगा/क्योंकि इससे बुरा तो अब क्या होगा।"[18]

ऐसे साधारण मनुष्य की आकाँक्षाओं के मृत हो जाने पार एक कविता पाश ने लिखी थी जिसका नाम था सबसे खतरनाक । इस कविता में सपनों के मर जाने की भयावहता को दर्शाते हुए एक तरह से सपनों को बचाए रखने की कवायद भी कहीं न कही दिखाई देती है। लेकिन हकीकत यह है कि अब सपने बचे ही कहाँ रह गए हैं। राजेश जोशी अपनी एक कविता में कहते हैं- "हमारे स्वप्न में अब कोई जगह नहीं/फलों और फूलों से लदे होने के स्वप्न के लिए/अब हमारी रात में हमारी नींद में/सिर्फ मृत्यु धूमती हैं नंगे पाँव/दौड़ते भागते हांफते"(वृक्षों का प्राथना गीत-2, पृ. सं. 188)

इसी आम मनुष्य के हक़ में क्या बेजोड़ पैरवी, नरेश सक्सेना अपनी कविता 'समुद्र पर हो रही है बारिश' में करते हैं। उनकी मानें तो सुविधाओं पर यदि हक़ है तो श्रम में भी भागीदारी लाजिम है- "दुनिया के नमक और लोहे में हमारा भी हिस्सा है/तो फिर दुनिया भर में बहते खून और पसीने में/हमारा भी हिस्सा होना चाहिए।"[19]

लेकिन इतनी ही सूरत अच्छी होती तो समकालीन कविता का मानवीय पहलू उभरता ही क्यों? कुमार विकल अपनी कविता 'मुक्ति के दस्तावेज' में स्पष्ट होकर आज के आदमी की हालत बयाँ करते हैं-"मैं एक सी व्यवस्था में जीता हूँ/जहाँ मुक्तज़िन्दगी की तमाम संभावनाएँ/सफ़ेद आतंक से भरी इमारतों के कोनों में/नन्हें खरगोशों की तरह दुबकी पड़ी हैं।"[20]

यह दुबके पड़े रहना ही आज के मनुष्य की मानों नियति हो गई है। बल्कि कहना चाहिए की भय, लोभ, स्वार्थ से बंधा आज का आम व्यक्ति इस कदर आत्म-केन्द्रित हुआ है कि उसे अपने मरते पिता के मर जाने का भय भी उसे परेशान नहीं करता क्योंकि वे उम्रदराज जो ठहरे। यह संवेदनहीनता चिंतनीय हो सकती है। किन्तु यह एक ऐसा यथार्थ है जिससे मूँह नहीं फेरा जा सकता- "एक चुप नागरिक की तरह हर गलत काम में शरीक होता हूँ/ अपने से छोटों को देखता हूँ हिकारत से/डिप्टी कलक्टर को आता देख कुर्सी से खडा हो जाता हूँ/पड़ोसी के दुख को मानता हूँ पड़ोस का दुख/और एक दिन पिता बीमार होते हैं तो सोचता हूँ/अब पिता की उम्र हो गई है।"[21]

ऐसे में समकालीन कवि भी किसी आम मनुष्य की तरह ही अपनी टुच्ची सुविधाओं के लिए अपना जमीर खो देता है और उस पर केवल शर्मसार होने के अलावा उसके पास कोई विकल्प नहीं है- "यों तो मैं खुश हूँ/परन्तु मुझे शर्म आती है/अपनी समकालीन कायरता पर/मैं शब्दों से काम चलाता हूँ।"[22]

जिस हाँफते हुए आदमी का बयान समकालीन कविता है, वह केवल लोकतंत्र के बिगड़ते स्वरूप, अवसरवाद, पूंजीवाद, भूमंडलीकरण, आर्थिक भ्रष्टाचार का ही ग्रास नहीं बना है बल्कि एक और सामाजिक यथार्थ है जो उसे

रोज तोड़ता है, जिसे 21वीं सदी में होते हुए भी वह झेलने को अभिशप्त है, वह है जातिवाद। जिस समाज में अब तक जाति का दंश खत्म हो जाना चाहिए था वहाँ अभी भी एक व्यक्ति अपनी अस्मिता को लेकर स्वायतता प्राप्त नहीं कर पाया है। यह दुर्भाग्य है कि आम व्यक्ति जातिवाद और गरीबी की दोहरी मार झेलने को आज भी मजबूर और बेबस है। अकारण नहीं है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि को कहना पड़ा- "बड़ी यंत्रणा होती है/इच्छाओं के विरुद्ध जीना/या देखते देखते छिन जाना/उन क्षणों का/जिनमें हँसा जा सकता था/हवाओं की तरह।"[23]

दलितों के जीवन पशु से कमतर मान लिया जाता है। एक साधारण दलित की हैसियत आज भी किसी पशु पक्षी की हैसियत से कम ही है- "यहाँ आदमी/कीड़े मकोड़ों की तरह मर रहे हैं/ और वे हैं कि गाय और गोबर की/ रक्षा की बात कर रहे हैं।"[24]

भाषा सिंह की किताब है 'अदृश्य भारत' जिसमें आज भी अपनी नंगी हाथों से मैला उठाने वाले दलितों की जानकारी प्रदान की गई है। यह किताब 2012 में प्रकाशित हुई थी। किन्तु क्या आज भी स्थितियों में सुधार आया है? जाहिर है इसका जवाब न ही होगा। यह घृणित कार्य दलितों पर सदियों से थोपा गया है जो आज भी बदस्तूर जारी है। भारतीय रेल हाथ से मैला ढोने वालों का सबसे बड़ा नियोक्ता है (दीगर बात है कि वह इसे मानने से इनकार करता है। सोचिए इस कार्य को करने वाला भी तो एक मनुष्य ही है। इसलिए तो ओमप्रकाश वाल्मीकि इस व्यथा को हमारे सामने एक प्रति प्रश्न की तरह रखते हैं- "यदि तुम्हें/मरे जानवरों को खींचकर/ले जाने के लिए कहा जाये और/ कहा जाये ढोने को/पूरे परिवार का मैला/पहनने को दी जाये उतरन/तब तुम क्या करोगे?"[25]

जाति का शमन अब भी नहीं हुआ है। उलटे पिछले कुछ-एक साल में जाति को लेकर लगातार हमले बढ़े हैं। उच्च जातियों द्वारा बड़ी बेशर्मी के साथ सामाजिक श्रेष्ठता का दंभ प्रदर्शन देखने को मिला है। वे अपने मद में चूर एक बेहतर समभाव से परिचालित समाज की कल्पना से विमुख हुए हैं। अपनी जाति के मद में चूर की बौराए हाथी की तरह- "मदांध हाथी/लदमद भाग रहा है/ हमरे बदन/गाँवों की कंकरीली गलियों में भटकते हुए/ लहूलुहान हो रहे हैं/हम रो रहे हैं/गिड़गिड़ा रहे हैं/जिंदा रहने कि भीख माँग रहे हैं/गाँव तमाशा देख रहा है।"[26]

पल भर को ठ्हर कर दलित स्त्रियों की बात आती है तो एक सिहरन सी मानों पूरे शरीर में दौड़ जाती है- "मुर्दा कौमें रोती हैं/अपनी बच्चियों के लिए/ रौंद दी गई जो, औरत बनने से पहले/और सिसकती हैं, उनके लिए भी जिन्हें रौंद दिया गया/औरत बनने की वजह से।"[27]

कुल जमा यह कि समकालीन कविताओं ने उस आम मनुष्य को अपनी संवेदना के केंद्र में रखा है जो केवल एक संख्या और एक ग्राहक और उपभोक्ता भर की भूमिका से बंध कर रह गया है। किन्तु वह अकेला नहीं है। उदय प्रकाश के किरदार 'जीवन दास' की तरह सभी जीवन दास के सहचर हैं। उसके साईकिल के अनोखे सवार। यह भी सच है कि कोई साईकिल की सवारी नहीं करना चाहता। अपने घर से बाहर किसी को नहीं सुहाता। लेकिन पेट पालने के लिए परदेश को भी अपना घर कहने का दंश एक आम आदमी के हिस्से पड़ता है। विस्थापन उसकी सच है- "कौन नहीं चाहता जहाँ जिस जमीन में उगे/मिट्टी बन जाए वहीं/पर दोमट नहीं, तपता हुआ रेत ही है घर/ तरबूज का।"[28]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नवल नंदकिशोर, समकालीन काव्य यात्रा, पृ. सं. 8
2. जोशी राजेश, एक कवि के नोटबुक, पृ. सं. 149
3. कमल अरु ण, अपनी केवल धार, पृ. सं. 14
4. कमल अरु ण, अपनी केवल धार, पृ. सं. 31
5. देवताले चंद्रकांत, सबसे जरू री काम, पृ. सं. 15
6. डँगवाल वीरेन, इसी दुनिया में, पृ. सं. 11
7. https://www.hindwi.org/kavita/hindu-sansad-asad-zaidi-kavita?sort=popularity-desc
8. डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पृ. सं. 82
9. अम्बुज कुमार, क्रू रता, पृ. सं. 19
10. डँगवाल वीरेन, दुष्चक्र में स्रष्टा, पृ. सं. 19
11. https://www.hindwi.org/kavita/1857-ha-saman-ki-talash-asad-zaidi-kavita-2
12. https://www.hindwi.org/kavita/1857-ha-saman-ki-talash-asad-zaidi-kavita-2
13. डबराल मंगलेश, हम जो देखते हैं, पृ. सं. 13
14. ज्ञानेन्द्रपति, संशयात्मा, पृ. 123
15. जोशी राजेश, नेपथ्य में हंसी, पृ. 60
16. मनमोहन, जिल्लत की रोटी, पृ. सं. 24
17. https://www.hindwi.org/kavita/main-us-adami-ko-janta-hoon-rituraj-kavita
18. https://www.hindwi.org/kavita/main-us-adami-ko-janta-hoon-rituraj-kavita
19. सक्सेना नरेश, समुद्र पर हो रही है बारिश, पृ. सं. 81
20. विकल कुमार, सम्पूर्ण कविताएँ, पृ. सं. 45
21. अम्बुज कुमार, क्रू रता, पृ. सं. 12
22. अम्बुज कुमार, अतिक्रमण, पृ. 83
23. वाल्मीकि ओमप्रकाश, बस्स बहुत हो चुका, पृ. 79-80
24. ठाकुर हरिनारायण, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 414
25. भारती कँवल, संपादक, दलित निर्वाचित कविताएं, पृ. 60
26. भारती कँवल, संपादक, दलित निर्वाचित कविताएं, पृ. 37
27. भारती कँवल, संपादक, दलित निर्वाचित कविताएं, पृ. 193
28. कमल अरुण, अपनी केवल धार, पृ. सं. 13

असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, नागालैंड विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रीमद् भागवत गीता के कर्मयोग तथा श्रीकृष्ण के जीवन आदर्श की प्रासंगिकता

डॉ एस रज़िया बेगम

"तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये।

आयासायापरम् कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्।"[1]

श्री विष्णु पुराण में उल्लेखित इस श्लोक का अर्थ है - कर्म वही है जो बंधन में ना बांधे विद्या वही है जो आपको सभी बंधनों से मुक्त कर दे। इसके आलावा सभी कार्य या तो निरथर्क है या शिल्पगत है।

यदि भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का विश्लेषण करें तो इसकी सार्थकता स्वतः हमारे सामने मूर्त हो जाती है। प्राचीन भारत में दो तरह की शिक्षा व्यवस्था हमें देखने को मिलती है 1.व्यावहारिक शिक्षा या जीवनोपयोगी शिक्षा 2.आध्यात्मिक शिक्षा।

व्यावहारिक या जीवनोपयोगी शिक्षा, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस शिक्षा के अंतर्गत जीवन के कार्य-व्यापार से जुड़ा हर वह ज्ञान और कला आता है जो मनुष्य के जीवन निर्वाह हेतु आर्थिक उपार्जन के लिए आवश्यक है। अतएव भारत में प्राचीन काल से ही व्यवहारिक एवं जीवनोपयोगी शिक्षा को महत्व दिया जाता रहा है। जिसके अंतर्गत प्रत्येक बच्चे को भविष्य में अपने जीविकोपार्जन द्वारा परिवार के भरण पोषण और सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने हेतु विभिन्न तरह के दक्षता या रुचि अनुसार युगीन जरूरतों के अनुरूप विभिन्न तरह के कार्य कलापों में उन्हें प्रशिक्षित भी किया जाता था।

गुरुकुल शैक्षिणिक व्यवस्था के आधार थे जहाँ राजा, रंक या स्त्री सभी को एक समान रूप से गुरु के ही आश्रम में रहना होता था। गुरु का दायित्व सिर्फ उन्हें विभिन्न विषयों की शिक्षा देना ही नहीं होता था अपितु उस कार्य से लोक कल्याण की शिक्षा देना भी होता था। उनके आचार विचार को 'स्व' से 'पर' तक की यात्रा पर ले जाना होता था। क्योंकि प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की तरह केवल धनपशु तैयार करना नहीं था। कहने का तात्पर्य यह है की ज्ञानार्जन का उद्देश्य सिर्फ और सिर्फ पैसा कमाना नहीं था। तब मनुष्य को 'मानव संसाधन' में नहीं बदल दिया गया था। हमारी प्राचीन शिक्षा ने मनुष्य हो प्रकृति उसको वस्तु समझ कर उपयोग करने की प्रवृत्ति को हमेशा से निकृष्टतम कार्य समझते हुए मनुष्य के अन्दर अध्यात्मिक चेतना को विकसित और स्थापित करने का कार्य किया। भारत में शिक्षा को दर्शन से जोड़कर ही प्रदान किये जाने की परम्परा रही।

तब शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही राष्ट्रनिष्ठ आत्मनिर्भर पीढ़ी का निर्माण करना था। "प्राचीन काल में धौम्य, च्यवन ऋषि, द्रोणाचार्य, सांदीपनि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि, गौतम, भारद्वाज आदि ऋषियों के आश्रम प्रसिद्ध रहे। बौद्धकाल में बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य की परंपरा से जुड़े गुरुकुल जगप्रसिद्ध थे, जहाँ विश्वभर से मुमुक्षु ज्ञान प्राप्त करने आते थे और जहाँ गणित, ज्योतिष, खगोल, विज्ञान, भौतिक आदि सभी तरह की शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक गुरुकुल अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध था। कोई धनुर्विद्या सिखाने में कुशल था तो कोई वैदिक ज्ञान देने में, कोई अस्त्र-शस्त्र सिखाने में तो कोई ज्योतिष और खगोल विज्ञान की शिक्षा देने में दक्ष था।"[2] श्रीमद्भागवत गीता में शिक्षा का यही हमें प्राप्त होता है। यहाँ देने योग्य बात यह कि शिक्षा जब अध्यात्म जैसे दर्शन या उच्च विचार के साथ जुड़ती है तो वह परिमार्जित हो ज्ञान का स्वरूप ग्रहण करती है। यहीं से शिक्षा और ज्ञान में एक बुनियादी फर्क भी नजर आता है। जहाँ ज्ञान मानव कल्याणकारी भावों का संवहन करता है शिक्षा सिर्फ शास्त्रोक्तज्ञान है जो मनुष्य को सांसारिक विषयों के प्रति आसक्त बनाती है और उसके अन्दर तामसी विचारों को बढ़ाता है। जिसके परिणामस्वरूप आज मनुष्य के अन्दर अहंकार, निराशा, कुंठा, नैतिक पतन आदि गुण जयादा दिखने लगे हैं। इसी भाव की अभिव्यक्ति श्रीमद भगवत गीता के इस श्लोक में हम देख सकते हैं- "विषयान्पुंस? सङ्गस्तेषूपजायते।/सङ्गात्संजायते काम? कामात्क्रोधोऽभिजायते?"[2](अध्याय-2, श्लोक 62)

अर्थात, विषयों (वस्तुओं) के बारे में सोचते रहने से मनुष्य को उनसे आसक्तिहो जाती है। इससे उनमें कामना यानी इच्छा पैदा होती है और कामनाओं में विघ्न आने से क्रोध की उत्पत्ति होती है। और यह क्रोध जैसा कि श्रीकृष्ण आगे कहते हैं - "क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।/ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति?"[3] (अध्याय-2, श्लोक 63)

अर्थात, क्रोध से मनुष्य की मति मारी जाती है यानी मूढ़ हो जाती है जिससे स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृति-भ्रम हो जाने से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश हो जाने पर मनुष्य खुद अपना ही का नाश कर बैठता है।

अर्जुन को ज्ञान देते श्रीकृष्ण को शायद आज के आधुनिक युग के इस दारुण स्थिति का पता अवश्य रहा होगा। समय के साथ शिक्षा के बदलते स्वरूप ने जीवन से बहुत सारे स्वाभाविक गतिविधियों को बाधित किया और विद्यार्थियों के ऊपर कई तरह के अनावश्यक दबाव विकसित किया और इस वयवस्था में शिक्षा का जो उद्देश्य व्यक्तित्त्व निर्माण द्वारा बेहतर मनुष्य बनाने का था वो कहीं बहुत पीछे छूट गया। जीवन में बहुत ही अनिश्चितताएँ और असुरक्षा पैदा होने लगी और साथ ही इन परिस्थियों ने व्यक्ति को मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी बहुत प्रभावित किया। आज शिक्षा का उद्देश्य आधिकाधिक अंक प्राप्त कर बेहतर रोजगार या नौकरी तक सिमट गया और जीवन की मूल प्राथमिकताएं गौण होती चली गई नतीजतन, कुंठा, अवसाद, अहंकार जैसी चीजें इतनी ज्यादा मात्रा में भर गयी की थोड़ी सी भी प्रतिकूल परिस्थियाँ या मनोवांछित परिणाम न मिलना जैसी चीजें इस तरह अंधकार की और ठेलती है की वह आत्महिंसा या प्रतिहिंसा के रूप में समाज में आती है।

व्यक्ति और समाज को इस आत्महंता स्थिति से सिर्फ गुरु ही उबार सकता है। एक वही है जो व्यक्तिको विभ्रम, किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति से बाहर निकाल सकता है। तभी तो हमारे यहाँ गुरु की महिमा देवताओं से भी ऊपर बखानी गयी है। "गुरूब्रह्मा गुरूविष्णु, गुरु देवो महेश्वरा।/ गुरु साक्षात परब्रह्म, तस्मै श्री गुरु वे नमः।।"[4]

कबीर दास ने भी गुरु की महिमा का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है - गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पायें/ बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताये।

क्योंकि एक गुरु ही है जो ज्ञान देकर सत्कर्म का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। हमें इहलोक और परलोक के संकटों से उबार सकता है। आसक्ति से मोक्ष की ओर लेर जा सकता है। लेकिन गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के लिए भक्तिया समर्पण का होने अतिआवश्यक है। भक्तिका अर्थ सिर्फ आराधना ही नहीं होती इसका अर्थ आस्था और विश्वास भी होता है। जब तक शिष्य अपने गुरु या शिक्षक पर पूरी आस्था और विश्वास नहीं रखता वह उससे ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। शिक्षक के ऊपर अविश्वास उसके भीतर के अहंकार को दिखता है। अहंकार अज्ञानता से पैदा होता है और यह स्थिति हमें अपने गुरु से भी कुछ भी ग्रहण करने से रोकता है। इस प्रकार वह अपने सीखने और ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया को अवरोधित करता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में श्रीकृष्ण भी ऐसे ही गुरु हैं जिन्होंने गीता का ज्ञान देकर भले ही हजारों साल पहले अर्जुन जैसे शिष्य को दुविधा और अज्ञानता के अंधकार से निकाल कर कर्तव्यपरायणता की ओर उन्मुख किया था। किन्तु यह सार्वभौम सत्य है कि हजारों साल बाद भी गीता के माध्यम से दिया हुआ उनका ज्ञान हमें हमारे मन मस्तिष्क पर छाये अवसादों, कुंठाओं, अहंकार से निकल हमें कर्तव्य पथ पर चलने को प्रेरित कर रहा है।

विनोवा भावे भी जो गीता के ज्ञान दर्शन से बहुत प्रभावित थे। गीता को परिभाषित करते हुए कहते हैं - "जीवन को व्यवहार में जीने की जो कला या युक्ति है उसी को योग कहते हैं। सांख्य का अर्थ है सिद्धांत अथवा शास्त्र और योग का अर्थ है कला। गीता सांख्य और योग दोनों से परिपूर्ण है। और शास्त्र और कला दोनों के योग से जीवन सौन्दर्य खिलता है।" जीवन जीने की इसी कला या उक्तिको गीता में कर्म कहते हैं। और यदि कर्म अनासक्ति भाव से किया जाये तो ऐसा कर्म लोक कल्याणकारी हो जाता है। तथा श्रेष्ठ व्यक्ति और समाज का निर्माण करता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।/ मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।2.47।।[4]

प्रत्येक मनुष्य जीवन में कभी न कभी अर्जुन की तरह

अवसाद ग्रस्त होकर कर्तव्य निर्वाह में दुविधा और द्वंद्व से घिर जाता है। जीवन के ऐसे निराशाजनक क्षणों से बाहर निकालने के लिए श्री कृष्ण इस श्लोक के माध्यम से अनासक्त कर्म का ज्ञान अर्जुन को देते हुए कहते हैं - तेरा कर्म में ही अधिकार है ज्ञान निष्ठा में नहीं। वहाँ (कर्म मार्ग में) कर्म करते हुए तेरा फल में कभी अधिकार न हो अर्थात् तुझे किसी भी अवस्था में कर्म फल की इच्छा नहीं होनी चाहिये।) इसका अर्थ ये नहीं कि कर्म फल रहित होते हैं किन्तु फल को सोंचकर ही कार्य करने वाले के मन में अनिश्चितता का भाव उन्हें असुरक्षा की तरफ ले जाता है। और यह स्थिति हमारी निश्चयात्मकता को कमजोर करती है। हमारे कर्म करने के क्षमता को प्रभावित करती है। और आत्महंता प्रवृति को जन्म देती है। आज छात्रों में बढती आत्महत्या इसी का परिणाम है। इसलिए इस श्लोक के माध्यम से श्री कृष्ण यह सन्देश देते हैं कि तुम्हारे हाथ में कर्म की ताकत है तो उसे पूरी ताकत के साथ करो। फल तुम्हारे हाथ में नहीं है अनिश्चित है तो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित की ओर मत जाओ। अपना कर्म करते चलो।

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्यसे महिम्।/ तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।[5] (अध्याय-2, श्लोक 37)

इस श्लोक के माध्यम से वे अर्जुन को समझाते हैं योद्धा पलायन नहीं करते। योद्धा का कर्म है लड़ना। योद्धा या तो लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त क स्वर्ग का भागी होता है या जीत कर धरती का सुख भोगेगा। इसलिए उठो, हे कौन्तेय (अर्जुन), और निश्चय करके युद्ध करो। आगे वे कहते हैं पीठ दिखाए हुए योद्धा अपमान के सिवाए कुछ प्राप्त नहीं करते। इस प्रकार वे वर्तमान में सामने उपस्थित जीवन संघर्षों से लड़कर विजय प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे बताते हैं कर्म और सिर्फ कर्म ही जीवन का मर्म है। कर्म से श्रेयस्कर और कुछ नहीं है। आगे इसी दुविधा को और स्पष्ट करते हुए श्री कृष्ण दुसरे अध्याय के 48 वे श्लोक में कहते हैं - "योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।/सिद्धयसिद्धयो? समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"[6]

अर्थात- कामना को त्याग कर सफलता और असफलता को एक समान मान कर तू अपने कर्म के प्रति एकाग्र रहे। कर्म का कोई फल मिले या न मिले दोनों ही मन की अवस्थाओं में जब व्यक्ति का मन एक समान रहता है उसी स्थिति को समत्व योग अर्थात कर्म योग कहते हैं। कर्म में कुशलता या गुणवत्ता तभी आती है जब व्यक्ति मन और बुद्धि को और जगह से हटाकर एक विषय पर अपने मन मस्तिष्क को केन्द्रित कर देता है। अध्याय 2 के ही 50वें श्लोक में श्री कृष्ण कहते हैं योग? कर्मसु कौशलम अर्थात कर्म में कुशलता अथवा गुणवत्ता ही योग है। यह कुशलता अथवा गुणवत्ता एकाग्रता से ही आती है। और सफलता का मार्ग इसी से होकर निकलता है।

गीता में श्रीकृष्ण कर्म को सर्वोपरी मानते हुए उसे ज्ञान के उपर प्रतिष्ठापित करते हैं। कर्म के इस महत्व को कृष्ण के इस उपदेश से समझा सकता है,

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।/स यत्प्रमाणं कुरु ते लोकस्तदनुवर्तते।।[7]

अर्थात श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त लोक मानस उसी के अनुसार व्यवहार करने लग जाते हैं। इसलिए सभी श्रेष्ठ जनों को भी वे निर्देश हुए कहते हैं कि सभी तरह से साधन संपन्न होने से, या वैसे प्रबुद्ध आत्माएँ, चिन्तक, विरागी, ज्ञानी पुरुष जो सांसारिक उत्तरदायित्वों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं होने के बावजूद संसार के प्रयोजनार्थ बिना किसी व्यक्तिगत लाभ के निरंतर कर्म करना होगा। क्योंकि उनका यह कार्य अज्ञानी और सामान्य बुद्धि युक्त जनसामन्य को उनका अनुकरण कर कर्म करने के लिए प्रेरित करेगा।

सम्पूर्ण गीता का ज्ञान ही कर्मयोग के महत्व को प्रमुखता से प्रतिष्ठापित करता दिखाई पड़ता है। श्रीमदभगवत गीता महाभारत के भीष्म पर्व का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसमें कुल 18 अध्याय हैं। जैसा कि हम जानते हैं महाभारत का युद्ध 18 दिन तक चला था और कृष्ण द्वारा इस दौरान प्रत्येक दिन अपने शिष्य या सखा अर्जुन को जो शिक्षा दी गयी उसे ही इन 18 अध्यायों में संगृहीत किया गया है। इसमें कुल 700 श्लोक हैं। गीता ही नहीं अन्य ग्रंथों में भी कर्म को ज्ञान से उपर माना गया है - ""शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा/यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।"[8]

अर्थात, शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद भी लोग मूर्ख रह जाते हैं। परन्तु जो क्रियाशील है वही सही अर्थ में विद्वान् है। यानी बिना कर्म के निरा शास्त्र का ज्ञान व्यर्थ है।

श्री कृष्ण का जीवन इस मायने में सर्वाधिक प्रासंगिक है कि एक राजा होते हुए भी श्रीकृष्ण ने एक कर्मयोगी का जीवन जिया। इसीलिए उन्हें भारतीय वांग्मय में योगेश्वर की उपाधि दी गयी है। पूरे भारतीय साहित्य या धर्म के इतिहास में वे एकलौते ऐसे नायक हैं जिनकी पहचान उनके देवत्व और राजत्व से परे रहे। वे गुरु हैं, मार्गदर्शक हैं, उद्धारकर्ता, कूटनीतिज्ञ हैं लेकिन सब रूपों से बढ़कर सखा हैं, प्रेमी हैं। सच कहा जाये तो प्रगतिशील विचारों को धारण किये भारतीय राजनीती के प्रथम लोकनायक हैं।

गीता ज्ञान के अतिरिक्त उनका सम्पूर्ण जीवन भी हमारे जीवन के लिए अनुकरणीय है। जिनमें मुख्य रूप से हम देखें तो कर्म, प्रेम और सखा भाव जो वर्तमान समय के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण है जो उनके जीवन से सीखने योग्य है। वर्तमान समय में जब हम देखते हैं की निहित क्षुद्र स्वार्थ के लिए अपने निजी रिश्ते और मित्र भी दुश्मन हो जाते हैं कृष्ण-सुदामा की मित्रता अनुकरणीय है। राजपरिवार से संबंध रखनेवाले श्रीकृष्ण का समाज के ग्वाल-बालों के साथ उनकी मित्रता अनुपम है।

जीवन में धैर्य भी कृष्ण से सीखने लायक है। दुर्योधन द्वारा अपमानजनक व्यवहार करने के बावजूद कृष्ण कभी तिरस्कार पूर्ण व्यवहार नहीं करते। शिशुपाल द्वारा लगातार अपमान किये जाने 99वीं गाली दिए जाने तक अपना धैर्य नहीं खोते।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कृष्ण का जीवन और उनकी शिक्षा आज के समय में अत्यधिक प्रासंगिक हो गए हैं। इन शिक्षाओं के अनुकरण द्वारा हम आज की युवा पीढ़ी के अन्दर हताशा, निराशा, अहंकार मिटाकर उनमे सामाजिकता की भावना का विकास किया जा सकता है।

संदर्भ

1. https://www.patrika.com/opinion/sa-vidya-ya-vimuktaye-
2. https://www. gitasupersite .iitk. ac.in
3. https://www.gitasupersite.iitk. ac.in
4. https://www.bhaskar.com/local/mp/gwalior/morena/news/guru-brahma-guru-vishnu-guru-devo-maheshwara-guru-sakshat-parabrahma-tasmai-shri-guruve-namah-127483232.html
5. https://www.gitasupersite.iitk.ac.in
6. https://www.gitasupersite.iitk.ac.in
7. https://www.gitasupersite.iitk.ac.in
8. https://bhagwatpurans.blogspot.com/2018

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, विज्ञान एवं मानविकी संकाय
एस. आर. एम. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान
कट्टनकुलाथुर–603203

उत्तर

1. नाथूराम शर्मा 'शंकर'
2. श्रवण कुमार गोस्वामी
3. भूषण
4. डॉ वी के हरिहरन उण्णित्तान
5. नवगीत
6. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र
7. देवकी नंदन खत्री
8. सालवती
9. बनारस अखबार
10. डॉ विवेकी राय
11. वासुदेव शरण अग्रवाल
12. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
13. चिंतामणि
14. पंडित रामानंद
15. रिपुदारणदास
16. एडविन ग्रीब्स
17. भिखारी दास
18. प्रेम कपाडिया
19. प्रेमचंद
20. भ्रमरानंद

'जन्नत ए बेनज़ीर से जहन्नुम तक के वादी की तब्दीली':चंद्रकांता की कहानियों के विशेष संदर्भ में

रिसवाना पी एल / डॉ ए के बिंदु

शोध सार : दुनिया के उपर मकड़ी की जाल के समान व्याप्त आतंकवाद एक मानवता विरोधी प्रक्रिया है। आतंकवाद जैसी अंतर्राष्ट्रीय समस्या राष्ट्रों के बीच की आपसी संबंध को खतरे में डालती है।आतंकवाद के मूल में कट्टर धार्मिकता, साँप्रदायिकता और अमानवीय मानसिकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो आतंकवाद एक प्रकार की हिंसात्मक प्रक्रिया है। किसी व्यक्ति या संगठन द्वारा राष्ट्रों और लोगों में पारस्परिक वैमनस्य बढ़ाने तथा अशांति फैलाने के उद्देश्य से बम विस्फोट करने, बेकसूर लोगों का खून बहाने, संपत्ति नष्ट करने तथा आवश्यक सेवाओं में बाधाएँ उत्पन्न करने के उद्देश्य से किये जाने वाले कार्य कलापों को आतंकवाद कहा जाता है। विश्व और समाज की चुनौतियों को साहित्य द्वारा अभिव्यक्तिदेना सहज है। लेकिन आतंकवाद के संदर्भ में यह अभिव्यक्ति खतरनाक है। इसके खिलाफ कलम चलाने के कारण साहित्यकारों को बहुत सारी यातनाएँ सहनी पड़ीं। आतंकवाद के खिलाफ प्रतिरोध प्रकट करने के कारण बंगलादेशी रचनाकार तसलीमा नसरीन को आतंकवादियों द्वारा सज़ा दी गई। पाकिस्तान की चौदह वर्षीय बालिका मलाला युसूफ साई पर हुए अत्याचार भी इसका नतीजा है। आतंकवादी गतिविधियों से पीड़ित राष्ट्रों में भारत भी शामिल है। इसलिए आतंकवाद हिन्दी साहित्य का भी एक गरमागरम विषय है। हिन्दी साहित्य में स्वयंप्रकाश, राजेन्द्र जोशी, सुधा अरोड़ा, अजहर वजाहत के साथ खुद आतंकवादी गतिविधियों का शिकार बनी लेखिका चंद्रकांता भी आतंकवाद और उसके भीषण मानसिकता का यथार्थ उकेरने में सफल हुई हैं। प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है। चंद्रकांता की कहानियों से जब हम रूबरू होते हैं तब शुक्ल जी का यह कथन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

बीज शब्द : आतंकवाद, कश्मीर, धर्मान्धता, राजनीति, दिग्भ्रमित युवा, विस्थापन, नारी शोषण, अमानवीयता, कर्फ़्यू, मानवाधिकार का उल्लंघन

मूल आलेख : आज दुनिया गरीबी, बेरोज़गारी, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक विपत्ति जैसी बहुत सारी समस्याओं से गुज़र रही है। इनमें सबसे खतरनाक है आतंकवाद। दुनिया का हर क्षेत्र आज आतंक से पीड़ित है। बांग्लादेश, भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, श्रीलंका, ईराक, इरान, कुवेत, सिरिया, तुर्की आदि देशों में आतंकवाद व्यापक रूप से फैल चुका है। आतंकवाद से उत्पन्न परिस्थितियों की वजह से राष्ट्रों के बीच आपसी संबंध में दरारें उत्पन्न होती हैं। आतंकवाद भाई-भाई के गले काटने को भी गलत नहीं मानता है। व्यक्तिया विशिष्ट समुदाय द्वारा अपनी ज़रूरतों को पाने के लिए समाज और शासन के आगे अपना प्रभुत्व या अस्तित्व दिखाने के लिए निर्मित परिस्थिति ही आतंक है। आतंक शब्द अंग्रेज़ी के Terror का पर्यायवाची शब्द है। आतंकवाद को किसी एक निश्चित परिभाषा में बाँधना कठिन है। इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज़ के अनुसार "यह एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा एक संगठित समूह अथवा दल अपने प्रकट उद्देश्यों की प्राप्ति मुख्य रूप से हिंसा के योजनाबद्ध उपयोग से करता है"[1] धर्म एवं राजनीति की कुटिल प्रक्रिया ही आतंकवाद का मुख्य कारण है।

भारत में विशेषकर कश्मीर में ही आतंक का भीषण आक्रमण चलता है। इस प्रकार की समस्याओं को लेकर हिंदी साहित्य में अनेक रचनाएँ सृजित हुई हैं। स्वयंप्रकाश ने अपनी कहानी 'पार्टीशन' में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय घटित भारत-पाकिस्तान विभाजन और उससे उत्पन्न समस्याओं का अंकन 'कुर्बान' नामक पात्र के माध्यम से किया है। राजेन्द्र जोशी का 'दूसरा कबीर' में आतंकवादी गतिविधियों का जिक्र हुआ है तो सुधा अरोड़ा की कहानी 'काला शुक्रवार' भी 1993 में मुंबई शहर में हुई आतंकवादी घटना का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सफल हुई है। आतंकवाद और साँप्रदायिकता से उत्पन्न गतिविधियों का सबसे बड़ा शिकार आम आदमी है। असहर वजाहत की कहानी 'गुरु -चेला संवाद' में आतंक और साँप्रदायिक दंगे से उत्पन्न दहशत भरी वातावरण में अपनी ज़िन्दगी को आगे बढ़ाने

के लिए प्रयास कर रहे आम आदमियों का चित्र प्रस्तुत किया है। आतंकवादी समस्याओं को लेकर रचित हिंदी कहानियों में समकालीन कहानीकार चंद्रकांता की कहानियों का विशेष महत्व है, क्योंकि वे खुद कश्मीर की हैं इसलिए वादी का दर्द खूब समझ सकती हैं। उनके मन में अपनी जन्मभूमि के प्रति हुई शंकाओं और परेशानियों को उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से शब्दबद्ध किया है। उनकी अधिकांश रचनाओं का आधार और प्रतिपाद्य विषय कश्मीर और वहाँ के आतंकवाद ही हैं। उनकी अपनी जन्मभूमि से हुए लगाव के संबंध में नासिरा शर्मा ने इस प्रकार कहा कि "कश्मीर जब सुलग उठा, तो स्वर्ग तुल्य धरती के लिए जो बेचैनी उन्हें महसूस हुई, उसकी अभिव्यक्ति कश्मीर के इतिहास, राजनैतिक उथल-पुथल पर 'कथा सतीसर' जैसे बृहत कृति उनके कलम से निकली, उनकी ढेरों कहानियाँ भी इस विषय पर हैं। कोई भी लेखक न अपनी ज़मीन से अलग हटकर लेखन कर पाता है, न अपने परिवेश से जो बचपन की यादों के रूप में उसकी धरोहर होता है, वह भूल नहीं पाता है, ठीक 'पोशनूल' के सुरीले गीत की तरह।"[2] अपनी कहानियों में चंद्रकांता ने कश्मीर समाज, कश्मीरी संस्कृति और इसकी सांस्कृतिक विरासत को न केवल एक पहचान दी है अपितु आतंकवाद, अलगाववाद, सांप्रदायिकता और धार्मिक उन्माद से ग्रसित कश्मीर के यथार्थ को बहुत सरलता, सहजता और प्रामाणिकता के साथ दर्शाया है। उनकी कहानियाँ कट्टरता, हिंसा और उन्माद के खिलाफ मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए अपनी आवाज़ बुलन्द करती हैं। पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाने वाला कश्मीर आज आतंकवाद के लिए जानी जाती है। चंद्रकांता की कहानियों के केंद्र में कश्मीर के आतंकवाद से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का यथार्थ अंकन हुआ है।

1.दिग्भ्रमित युवकों द्वारा आतंकवाद का फैलाव : आतंकवाद फैलाने में दिग्भ्रमित युवा लोगों की भूमिका गंभीर और चिन्ताजनक मुद्दा है। आर्थिक असमानता, शिक्षा की कमी, बेरोज़गारी, सामाजिक असमानता, धार्मिक और राजनीतिक कट्टरता आदि युवा लोगों को आतंकवाद की ओर ले जाने के प्रमुख कारण हैं। दिग्भ्रमित युवक अपने प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण आतंकवादी गुटों में भाग लेते हैं। कुछ युवक दीन के नाम से आतंकवादी गुटों में ज़बरदस्ती शामिल होते हैं। इस प्रकार शामिल होते ये युवक आतंक के उद्देश्यों और परिणामों से अनभिज्ञ हैं। फिर भी वे अपने देश में आतंक फैलाने का कार्यक्रम चलाते हैं। 'काली बर्फ' कहानी में चंद्रकांता ने विभिन्न आतंकवादी गुटों में बाँटे युवकों की क्रिया कलापों का जिक्र किया है। इसमें आतंकवादी अफसल और उसके घायल आतंकवादी साथियों का इलाज नर्स परमी करती है। वह एक साथ आतंकवादियों और उसके द्वारा बेइज़्ज़त हुई लड़कियों का भी इलाज करती है। जिस माहौल में परमी काम करती है वह हमेशा आतंकवादियों के साये में है, इसलिए उसके प्रति व्याकुल माँ को तसल्ली देते हुए वह कहती है कि "सो जाओ माँ, इधर कोई नहीं आएगा। हमने किसी का क्या बिगाड़ा है?"[3] लेकिन परमी की इस भरोसे को तोड़ते हुए आतंकवादी अफसल ने उसी के साथ सहेली शमा पर भी बलात्कार किया। 'एक ही झील' कहानी में आतंकवादी दहशतों के फलस्वरूप अपने पुरखों के ज़मीन छोड़कर जाने के लिए अभिशप्त कथावाचिका जब सालों बाद वादी लौटा तो पता चला कि सर फिरे दहशतगर्दों ने वादी को पूरी तरह बदल दिया है। इसके संबंध में वह मल्लाह मुहम्मद से बातें करती है, जिसके नाव पर बैठकर ही वह उन दिनों स्कूल जाती थी। तब मल्लाह ने बताया कि "यही तो बदकिस्मती थी। भटक गये हमारे लड़के भी। गैरों के बहकावे में आकर, अपनों के दुश्मन बन गये। मिला क्या? मौत और बरबादी?"[4] इस तरह दिग्भ्रमित युवक घर-परिवार का नहीं पूरे समाज के लिए बेकार और खतरनाक हैं। इन दिशाहीन युवकों को सीधे रास्ते में लाने के लिए सरकार द्वारा कई योजनाएँ बनाने की ज़रूरत हैं। चंद्रकांता अपनी कहानियों के ज़रिए यह ज़ाहिर करती है कि युवा लोगों को अक्सर आतंकवादी संगठनों द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ती के लिए उपयोग किया जाता है जो उनकी भावनाओं और आदर्शों की फायदा उठाते हैं।

2.आतंकवाद और अमानवीय वृत्ति : चंद्रकांता की कहानियों में आतंकवाद के कारणों और परिणामों को विस्तार से दिखाया गया है। साथ ही अमानवीय वृत्ति के प्रभावों को भी उजागर किया गया है। हिंसा, क्रूरता और मानवाधिकारों का उल्लंघन जैसी अमानवीय प्रवृत्तियों का पर्दाफाश उनकी कहानियों की खासियत है। कश्मीर में हर पल आतंक की अमानवीय वृत्तियाँ घटित होती हैं। इसी वजह से लोग घर से बाहर निकलने में डरते हैं। क्योंकि उन्हें घर से निकलने पर ज़िन्दा वापस लौटने की उम्मीद नहीं होती। आतंकवादी अपने रास्ते में बाधा डालने वाले लोगों

को ज़िन्दा नहीं छोड़ते हैं। 'रहमते बारान' कहानी में आतंकवादियों के डर से घर के गोदाम में छिप गये शंकर को उससे पहले ही गोदाम में बैठे दहशतगर्दों ने मार डाला। आतंकवादियों द्वारा शिकार हुए शंकर की पत्नी और बच्चों को मारने का फैसला लेते वक्त उनकी क्रूर मनोवृत्ति इस वाक्य से ज़ाहिर होता है कि "शंकर को कोई रोनेवाला भी तो चाहिए"[5] आतंकवादी मासूम लोगों के उपर अपनी ताकत दिखाने के लिए अमानवीय वृत्तियाँ करते रहते हैं। 'वितस्ता का ज़हर' कहानी में चंद्रकांता ने आतंकवादियों के आक्रमण के कारण खून से लथपथ लाशों से भरे सड़कों का चित्र प्रस्तुत किया है। कहानी में शीला इस आतंकित माहौल में बेटे शेखर को घर से बाहर भेजना नहीं चाहती। क्योंकि वादी उस समय दादी के अनुसार "किसी दैत्य के हाथों में फँस गया है, एक एककर उठा लेगा लोगों को। लोगों की नीयत में जो फर्क आ गया है।"[6] 'रक्षक' कहानी में भी उन्होंने आतंकवादियों की क्रूरता का जिक्र किया है। कहानी में बंसी मास्टर के बेटा शाहजी को आतंकवादियों ने गोली से मार दिया। अपने बेटे की अकाल मृत्यु की पीड़ा लेकर बंसी मास्टर को पूरी ज़िन्दगी गुज़रना पड़ा। साथ ही जिहादियों के हाथों मारा गया अपने भाई की यादों में रहने के लिए सैनिक मणाक भी विवश बन गया। चंद्रकांता ने प्रस्तुत कहानी में मणाक और बंसी मास्टर के माध्यम से आतंक की विभीषक गतिविधियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। आर्थिक असमानता, सामाजिक अन्याय, राजनीतिक अस्थिरता आदि की वजह से उत्पन्न आतंकवाद के कारणों को उनकी कहानियों में दिखाया गया है। साथ ही मानव जीवन की हानि, सामाजिक विखंडन, आर्थिक विनाश जैसे आतंकवाद के परिणामों पर भी लेखिका ने जिक्र किया है।

3.आतंकवादियों द्वारा विस्थापित कश्मीरी पंडित :चंद्रकांता की कहानियों में कश्मीरी पंडितों के विस्थापन और उनके शरणार्थी जीवन को दिखाया गया है, जो उनकी जीवनशैली और संस्कृति को बदल देता है। कश्मीर में हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल-जुलकर रहते थे। उस ज़माने में उन लोगों के बीच कोई टकराहट नहीं था। लेकिन रिश्तों में अब दरारें आ गई है। फलस्वरूप विरासत से वादी में रहने वाले पंडितों को वहाँ से भागना पड़ा। वे लोग अपने ज़र-ज़मीन और पुरखों की यादों को त्याग कर जम्मू, दिल्ली, देहरादून, पंजाब आदि जगहों पर विस्थापितों की ज़िन्दगी जीने के लिए विवश हो गये हैं। विस्थापित होने की व्यथा और शरणार्थी शिविरों में बीते ज़िन्दगी की अस्थिरता का उल्लेख चंद्रकांता की कहानियों में द्रष्टव्य है। 'किस्सा गाश्कौल' कहानी में चंद्रकांता शरणार्थी शिविरों का शोचनीय चित्र प्रस्तुत करती है। गाश्कौल सेवा निवृत्त शिक्षक थे। वे महीनों के आतंकवादी धमकियों के रहते हुए अपनी ही जन्मभूमि में डटे रहने की कोशिश करते रहे, परन्तु उन्हें भी अंत में अपना ज़मीन छोड़कर जाना पड़ा। फलस्वरूप गाश्कौल को शरणार्थी शिविर में एक प्रकार का पशु तुल्य जीवन जीना पड़ता है।

'शरणागत दीनार्थ' कहानी में भी वादी को छोड़कर जाने के लिए मजबूर पंडितों के दयनीय स्थिति का अंकन हुआ है। उस समय वादी में आतंकवादियों ने पंडितों के निष्कासन के लिए बहन-बेटियों की बेइज़्ज़ती करना, दरवाज़े पर घर छोड़ने की रुक्के चिपकाना और धमकियाँ देने जैसी हरकतें किये गये। ऐसे वातावरण में लसपंडित के पड़ोसियों ने उनसे विवश याचनाएँ इस प्रकार की है कि "चले जाओ कुछ देर मैदानों की तरफ। फिजा खराब हो गई है। कोई सोचने की कोशिश नहीं करता। हालात ठीक होते लौट आना"[7] लेकिन तब तक वादी में डटे रहे लसपंडित अपनी बेटी जया के साथ हुए वारदात के बाद वादी छोड़ने को मजबूर हो गये। वादी से निष्कासित लसपंडित को बाकी ज़िन्दगी शरणार्थी शिविर में बिताना पड़ा। शरणार्थियों को वहाँ के लोग घृणा की दृष्टि से ही देखते थे। इसलिए लसपंडित के साथ कई पंडितों ने कैम्पों में पशु से भी बदत्तर ज़िन्दगी जिए। 'बदलते हालात में' कहानी में चंद्रकांता ने आतंक के फलस्वरूप कश्मीर से निष्कासित लोगों की अपनी जन्मभूमि के प्रति हो रहे आत्मीय संबंध को प्रस्तुत किया है। इसमें अजय और उमा वादी से छः वर्ष के निष्कासन के बाद फिर अपने घर लौटे हैं। इस वापसी के पीछे उन दोनों की माँ की अपने देश और घर के प्रति हो रही भावुकता है। माँ अभी-भी अपनी 'छूटे हुए' के लिए अशांत है, वे बार-बार कहती हैं "बेटी ! अभी तो मेरे नाखूनों से घर की रेत-मिट्टी निकली नहीं....मुझे क्या संजोया-बटोरा साथ लेने जाना था....?"[8] इसी प्रकार कश्मीर से निष्कासित हर कोई व्यक्ति अपने अतीत को भुलाने के लिए तैयार नहीं होता है। क्योंकि उन्हें अपनी जन्मभूमि से एक अटूट संबंध है। इन कहानियों के माध्यम से चंद्रकांता वादी के पंडितों

की मजबूरियों को यथार्थ के साथ प्रस्तुत करने में सफल हुई है, क्योंकि चंद्रकांता खुद ही इन तकलीफों से गुज़री थी।

4.आतंकवादियों के हाथ नारी शोषण : आतंकवादियों द्वारा किए गए अत्याचारों में सबसे दर्दनाक है नारी शोषण। आतंकवादी लोग धर्म के नाम पर स्त्रियों पर अत्याचार करते है। वास्तव में उनका कोई धर्म या विशवास नहीं, बल्कि उन्हें सिर्फ औरत चाहिए। वे अपनी शारीरिक पूर्ती के लिए औरत जाति का इस्तेमाल करके बाद में उन्हें मारकर कहीं फेंक देते हैं। चंद्रकांता की कहानियों में आतंकवादियों द्वारा नारी शोषण के विभिन्न पहलुएँ नज़र आती हैं। जैसे बलात्कार और यौन हिंसा, अपहरण और ज़बरन विवाह, मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना देना आदि। आतंकवादियों के अत्याचार के कारण उनकी औरतों को अपनी इज्ज़त खोना पड़ता है।'काली बर्फ' कहानी आतंकवादियों द्वारा स्त्रियों पर किए गए हीन अत्याचारों का दस्तावेज़ है। कहानी का पात्र परमी एक कुशल नर्स है। वह बलात्कार से भ्रूण लिए कुँवारी लड़कियों को अपमान से मुक्त करने का कार्य करती है। वह उन लड़कियों को तसल्ली देते हुए कहती है कि "इसमें तुम्हारा क्या कसूर सलमा? समझो, एक खौफनाक हादसा होकर गुज़र गया.... नूरी! रोने से हालात बदल नहीं जाएँगे, हौसला रखो। पाकीजगी तो मन की होती है। वक्तके कहर पर हमारा क्या ज़ोर?"[9] इन लड़कियों के साथ ही परमी घायल आतंकवादियों का भी इलाज करती है। फिर भी वह यही आतंकवादियों द्वारा बलात्कार का शिकार बन गयी है। इस प्रकार कहानी के अन्य पात्र लीला, रैना, रजनी और जया भी आतंकवादियों के अत्याचार के शिकार बन गई हैं।

'किस्सा गाश्कौल' कहानी में डॉ रैना की पत्नी कमला को उसकी पति के सामने आतंकवादियों द्वारा बलात्कार किया गया। बलात्कार का प्रतिरोध करने पर आतंकवादियों ने उसका अंग काटकर प्रदर्शन कर दी है। इसका जिक्र जियालाल ने इस प्रकार किया कि "वही जो बिट्टी का हुआ था। उन आततायियों ने डाक्टर रैना को रस्से से बाँध दिया और उसी के सामने उसकी पत्नी कमला रानी को बेइज्ज़त कर दिया। वह बड़ी दिलेर थी। उसने जालिमों के मुँह पर थूक दिया। फिर वही.....जो होना था। उन जालिमों ने कमला रानी के अंग काटकर उनकी नुमाइश कर दी....."[10] आतंकवादी औरतों पर अमानवीय वृत्तियाँ करने में हिचकते नहीं है। 'रहमते बारान' में आतंकवादी द्वारा कश्मीर से लोगों को निष्कासित करने के एक उपाय के रूप में औरतों पर अत्याचार करने का चित्र प्रस्तुत करता है। आतंकवादियों के अत्याचार से बचने के लिए लोग अपनी बहू-बेटी सहित वादी से सुरक्षित जगह की ओर जाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। 'शरणागत दीनार्थ' कहानी में लसपंडित की बेटी जया को आतंकवादी उठाकर ले जाते हैं। आतंकवादियों के बलात्कार से जया एक बेटी को जन्म देती है। बेटी को लेकर लौटती जया को समाज घृणा की दृष्टी से देखता है और शिविर में जया को रहने की इजाज़त न देते हुए भीड़ ने कहा कि "यह तुम कहते हो लसपंडित? उम्र भर धर्म की भाषा बोले और आज विपत्ति में इस पाप की गठरी को सीने से लगाओगे? नहीं, हमें अपनी बहू-बेटियों की आबरू बचानी है। तुम चाहो तो इसे साथ लेकर कहीं और आश्रय ढूँढ़ो।[11] केवल सरायेवाले नहीं बल्कि उसकी घरवाले भी लोकलाज के भय से उन्हें तिरस्कार करते है। इस तरह आतंकवादी कई प्रकार से औरतों की ज़िन्दगी को बर्बाद कर देते हैं।

5.कर्फ्यू के दौरान मानवाधिकार का उल्लंघन : दरअसल कर्फ्यू मानवाधिकार का उल्लंघन है। खासकर जब वह असामान्य रूप से लंबे समय तक लागू रहता है या विशेष समूहों के खिलाफ लक्षित होता है। यह नागरिकों की स्वतंत्रता और गतिविधि को सीमित कर सकता है, जिससे उनके जीवन और आजीविका पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। इसके कारण मानव जीवन अभावग्रस्त बन गया है। क्योंकि लोग काम पर नहीं जा पा रहे हैं। प्रसार माध्यमों के रोक के कारण लोगों तक सूचनाएँ पहुँचना मुश्किल बन जाता है। इस तरह कर्फ्यू मानव जीवन के प्रवाह में बाधा डालता है। चंद्रकांता की कहानियाँ कर्फ्यू के दौरान लोगों की स्वतंत्रता का जो हनन होती है उसकी ओर इशारा करती है। कर्फ्यू के कारण वादी में आ गए बदलाव को चंद्रकांता ने 'रहमते बारान' कहानी में इस प्रकार प्रस्तुत किया कि "अब कौन टूरिस्ट आयेगा? वादी के लोग भी कहाँ झीलों-बागों की सैर करने निकलते हैं। फूलों की क्यारियों में जंगली घास उग आयी है। रौंदी पड़ी अधसूखी घास पर महीनों छिड़काव नहीं हुआ। कहीं-कहीं नरगिस के पौधे बाग की बेनूरी पर रोते से लग रहे हैं। पता नहीं, कोई देखता भी है इस पार्क को! पानी के भीतर रहकर भी सूख गया है"[12] कर्फ्यू के कारण वादी की सुन्दरता को देखने

के लिए विदेशी लोग तो दूर स्वदेशी भी नहीं जाते है, क्योंकि वादी में कर्फ़्यू के कारण राशन-पानी के लिए घर से निकलने को भी पाबंधी लगा दी है। 'वितस्ता का ज़हर' कहानी में जब बच्चे बब्बा से टीवी देखने की इजाज़त माँगी तो अरुण ने वक्त के खतरे को समझाते हुए बताया कि "न, न सुना नहीं, लाउडस्पीकरों पर क्या घोषणाएँ की जा रही हैं। चित्रहार, फिल्म-विल्म कुछ नहीं देखना।"[13] जैसे कर्फ़्यू के दिनों में मानव हर तरह पाबंधी में रहने के लिए मजबूर हो जाते हैं। छोटे बच्चे तक इस हालात में परेशान है, इसके पीछे की वजह न जानते हुए भी।

चंद्रकांता ने अपनी कहानी 'नवशीन मुबारक' में वादी की कर्फ़्यू लगाने से हुए यथार्थ को मास्टर महाराज भट्ट के माध्यम से यों चित्रित किया है कि "लेकिन फिर भी कैद है। घर में बंद रहना मजबूरी है। आसमान में उड़ते पंछियों के पंख कुतर दिए गए हैं। आए दिन वादी में कर्फ़्यू और कांड, गोलियाँ और मारामारी चलती रहती हैं। आम आदमी हैरान-परेशान है। कभी सरकार का कर्फ़्यू, कभी जंगजुओं का प्रचार जाने सड़क पर मिलो या घर में, शंका की नज़रें उठती है, देर-सवेर घर से बाहर निकलो तो मौत! ऐसी हालात में महाराज भट्ट का हिसाब अकसर गड़बड़ जाता है। कब राशन-पानी लाए, कब सौदा सुलुफ? अभी झोला लेकर घर से बाहर निकलो, तो बाहर गोलियों की दनदनाहट सुनो। अभी दूकानें खुलेंगी, तो अभी लाउडस्पीकर लगी जीपों से दूकानें बंद करने का ऐलान हो जाएगा। कब क्या करे आदमी, समझ में नहीं आता।"[14] यहाँ कर्फ़्यू के कारण आम आदमी के जीवन में आए बुरे प्रभाव की ओर लेखिका सबका ध्यान आकृष्ट करती है।

निष्कर्ष : वर्तमान युग में आतंकवाद वैश्विक समस्या बन गयी है। इसके बारे में सारी दुनिया चिंतित है। मुख्य रूप से धर्मान्धता इसका कारण है। 'कित्थे जाणाम पुतर', 'रहमते बारान' और 'वितस्ता का ज़हर' कहानियों में प्रमुख रूप से इस प्रकार की आतंकवादी गतिविधियों का विवेचन हुआ है। आतंकवाद और उससे उत्पन्न समस्याओं के लिए चंद्रकांता ने हमारे शासकों की गलत नीतियों को ज़िम्मेदार माना है। लेखिका को यही दुख है कि कभी कश्मीर जन्नते बेनज़ीर था वही अब जहन्नुम बन गया है। आतंकवादियों के आतंक का सबसे अधिक शिकार नारी वर्ग ही हो रहे हैं। 'काली बर्फ' कहानी की लीला, रैना, रजनी, जया जैसी स्त्रियाँ आतंकवादियों द्वारा शोषित हैं। आतंकवादियों के भयानक इरादों और हुकूमत से भयभीत होकर असंख्य पंडितों को वादी से निष्कासित होना पड़ा। साथ ही शरणार्थी शिविर में उन्हें अत्यंत घृणित वातावरण में रहना पड़ा। भूख-प्यास से कितनों को ही प्राण देने पड़े। राशन के लिए उन्हें दिनभर धूप-बरसात में खड़े रहना पड़ा। इनकी ये त्रासद स्थितियाँ 'किस्सा गाश्कौल', 'शरणागत दीनार्थ' आदि कहानियों में चित्रित की गई हैं। वस्तुतः चंद्रकांता ने अपनी कहानियों के माध्यम से आतंकवाद और उससे उत्पन्न समस्याओं के भोगे हुए यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए इस समस्या की ओर शासकों और समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। साथ ही इन समस्याओं से उत्पन्न घातक परिणामों की ओर हमें ले जाती हैं।

संदर्भ

1. एडविन रोबर्ट एंडरसन सेलिग्मन, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज़, माकमिल्लन पब्लिशेर्स,1930-1967, पृ.576
2. संतोष गोयल, चंद्रकांता का सृजन संसार, अमन प्रकाशन, 2018, पृ.34
3. चंद्रकांता : कथानगर कहानी संकलन, अमन प्रकाशन, 2018, पृ.122
4. चंद्रकांता : अल्कटराज देखा कहानी संकलन,वाणी प्रकाशन, 2013, पृ.121
5. चंद्रकांता : कथानगर कहानी संकलन,अमन प्रकाशन, 2018, पृ.161
6. वही : पृ.167
7. वही : पृ.131
8. वही : पृ.141
9. चंद्रकांता : काली बर्फ कहानी संकलन, ग्रंथ अकादमी, 2013, पृ.155
10. चंद्रकांता : कथानगर, अमन प्रकाशन, 2018, पृ.184
11. चंद्रकांता : काली बर्फ,ग्रंथ अकादमी, 2013, पृ.21
12. चंद्रकांता : कथानगर, अमन प्रकाशन, 2018, पृ.157
13. वही : पृ.170
14. चंद्रकांता : काली बर्फ, ग्रंथ अकादमी, 2013, पृ.122

लेखक

रिसवाना.पी.एल
शोध छात्रा, महाराजास कॉलेज
एरणाकुलम
महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय
केरल

डॉ.ए.के. बिन्दु
सह आचार्या , हिन्दी विभाग
कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोची

पितृसत्तात्मक मानसिकता पर प्रहार : शकुंतिका

डॉ रजनी पी बी

समकालीन हिंदी साहित्य के बहुचर्चित उपन्यासकार है भगवानदास मोरवाल। प्रचलित विमर्शों के बरक्स मौजूदा सामाजिक,राजनीतिक परिवर्तनों,सर्वसत्ता व लोक विरोधी तत्त्वों तथा आम आदमी की प्रबल अदम्यता और जीजीविषा की पड़ताल करनेवाले कथाकार मोरवालजी का हिंदी कथा साहित्य में एक विशिष्ट पहचान है। आपका एक चर्चित एवं लघु उपन्यास है 'शकुंतिका'।

शकुंतिका उपन्यास पूर्णतः हमारी ग्रामीण सामाजिक पृष्ठभूमि से जुड़ा हुआ है। इसकी विषयवस्तु हमारे समाज की बेटियाँ हैं, जिन्हें चिड़िया माने गौरया की संज्ञा दी गयी है। वर्तमान भारतीय सामाज की पुरातन परंपराओं व आधुनिकता की चकाचौंध के बीच झूलती हमारी सामाजिक संरचनाओं के रेशों को ढिला करते यथार्थ को इसमें अभिव्यक्तकिया गया है। मूलतः भारतीय सामाजिक व्यवस्था का आधार पितृसत्तात्मक मानसिकता है, जिसमें पुरुष को अत्यधिक महत्त्व है। उसे वंश बढ़ाने का कारण मानकर कुलदीपक माना गया है। बेटी को पराया धन मान कर उसके जन्म पर आज भी नाक भौवें सिकुड़े जाते हैं। इसमें मोरवालजी ने पितृसत्तात्मक परंपरागत दकियानूसी मानसिकता पर प्रहार करते हुए स्पष्ट किया है कि बेटी के जन्म का स्वागत किया गया तो वह परिवार पर भार नहीं होती है बल्कि आधार बन सकती है।

उपन्यास का केंद्रीय पात्र भगवती और दुर्गा परंपरागत विचारधारा वाली मध्यवर्ग की महिलाएँ हैं जो वंश बढ़ाने के लिये बेटे के जन्म का समर्थन करती है। प्रारंभ में दुर्गा के घर पोते के जन्म पर थाली बजाकर आनंद व्यक्त किया जाता है। भगवती के घर में बड़े बलवंत के दो बेटियाँ हैं और तीसरी संतान होनेवाली है। भगवती के मन में डर है कि अगर बेटा पैदा नहीं हुआ है तो वंश कैसे आगे बढ़ेगा? यहाँ स्पष्ट है कि आधुनिक युग में भी पुत्र प्राप्ति की लालसा स्त्री के मन से कम नहीं हुई है। भगवती का डर जैसा वह तीसरी पोती के जन्म से बहुत दुखी होती है।

दुर्गा के घर में चार पोते हैं, मगर उनके व्यवहार से सिर्फ उस घर नहीं सारे मोहल्ले परेशान है कि न तो वह पढ़ने में तेज़ है, न संस्कारी। जबकि भगवती की पोतियाँ तो पढ़ने में तेज हैं समझदारी एवं संस्कारी भी है। पोते के व्यवहार से परेशान होकर दुर्गा कहती है कि "हे राम ! ये सारे कौरव इसी घर में पैदा हो गए, एक भी तो काम का नहीं निकला।" इसमें उग्रसेन और दुर्गा के दो बेटे घर छोड़ कर चले जाते हैं तो वे लोग अकेले हो जाते भी हैं।

भगवती एवं दशरथ की पोतियाँ उनकी सेवा करते देखकर उग्रसेन को सकुन मिलता है। सोचता है कि दशरथ पोतियों के कारण कैसे नशीबवान है। भगवती का छोटा बेटा रूपेश और जयंती शादी के छः साल बाद भी निस्संतान हैं। यहाँ अपने पोते के व्यवहार से तड़पने वाली दुर्गा, भगवती की उम्मीद जगाते हुए बच्चा गोद लेने की सलाह देती है। वह भी लड़के के बजाय लड़की को गोद लेने की सलाह देती है। यहाँ लेखक भगवती के माध्यम से परंपरागत मानसिकता वाली औरतों को समय के साथ स्वयं को बदलने की अपील करते हैं।

आगे भगवती की पोतियाँ, उच्च शिक्षा प्राप्त कर वकील एवं डॉक्टर बन कर आत्मनिर्भर हो जाती हैं। भगवती का परिवार अपनी बेटियों पर गर्व करता है। हमारे समाज में आज भी बिरादरी बाहर शादी करने के लिए विरोध होता है। ज्यादा पढ़ी लिखी लड़कियों के साथ शादी करने

को तैयार नहीं होते हैं। मगर शादी के बाद भी लड़कियाँ हमेशा अपनी माता पिता की चिंता करती रहती हैं एवं कभी भी उनसे अलग नहीं होती हैं। अगर बेटे हैं तो वहाँ बंटवारे की समस्या खड़ी हो जाती है। उग्रसेन के पोते इस प्रकार माता पिता को छोड़कर अलग हो जाते हैं। दशरथ की पोतियाँ तो दादा दादी के नाम पर फाउंडेशन का गठन करती हैं एवं अनाथाश्रम को डोनेशन तक देती हैं।

संक्षेप में कहें तो स्त्री और पुरुष एक ही रथ के दो पहिये होते हैं,दोनों एक समान होते हैं।लेकिन पितृसत्तात्मक मानसिकता को लेकर चलने वाला समाज स्त्री को समानता का अधिकार नहीं दे पाता है। बेटे को वंश बढ़ाने के खातिर कुलदीपक और भविष्य की लाठी माना जाता है। हमारे समाज में आज भी बेटियों की बजाय बेटे को प्रधानता दी जाती है। कुछ जनजातीय समुदायों को छोड़कर देश के सामाजिक स्वरूप में हम पितृसत्ता का ही अंकुश देख रहे हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की एक सबसे भयानक त्रासदी कन्या भ्रूण हत्या है, जो हमारे समाज में एक बड़ी समस्या बनकर उभरी है।

शकुंतिका ऐसे ही सामाजिक भेदभाव और लौकिक असमानता को दर्शानेवाला एक कथा प्रधान उपन्यास है जिसमें दो परिवारों की कथा के माध्यम से लेखक ने लड़कियों के जीवन को सकारात्मक रूप में दर्शाया है। मोरवालजी ने अपने उपन्यास के जरिए संदेश दिया है कि समय बदल रहा है,लड़की का स्वागत करके उन्हें अच्छे संस्कार और शिक्षा दी जाए तो वह आत्मनिर्भर होकर परिवार का सहारा बन सकती है। शकुंतिका के माध्यम से उपन्यासकार ने पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता पर तीखा प्रहार करने का सफल प्रयास भी किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. शकुंतिका- भगवानदास मोरवाल।
2. शकुंतिका का सृजन और दृष्टि - डॉ.अनिल सिंह।
3. भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ - डॉ .जयदीप कुमार विजय भाई चौधरी

अतिथि सहआचार्या, हिंदी विभाग

ऑल सेंट्स कॉलेज , तिरुवनंतपुरम

हिंदी-मलयालम के यशस्वी लेखक एवं अनुवादक **प्रोफ वी के हरिहरन उण्णित्तान** (4 जून 1939 - 5 मई 2025) को केरल हिंदी प्रचार सभा की श्रद्धांजलियाँ

अधिवक्ता मधु बी

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिला पत्रकारों की भूमिका : एक विश्लेषण

डॉ पवन कौंडल

प्रस्तावना : महिला सशक्तिकरण का मूल उद्देश्य महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारना है, इसका राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य में व्यापक प्रभाव पड़ता है। महिला सशक्तिकरण में महिला पत्रकारिता को एक विशेष स्थान प्राप्त है। महिला पत्रकारिता को महिलाओं के लिए निर्मित, और महिलाओं द्वारा संकलित, प्रकाशित या बनाई गई पत्रकारिता सामग्री के रूप में परिभाषित किया गया है[1]। ब्रिटिश राज के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप ने कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों का अनुभव किया, जिनमें महिला शिक्षा भी शामिल थी। स्वतंत्र भारत की पहली कुछ महिला पत्रकार, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कई युवा महिला क्रांतिकारियों की लेखनी से निर्मित हुईं। प्रसिद्ध पत्रकार जैसे विद्या मुंशी और स्वर्णकुमारी ने न केवल राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर लिखा, बल्कि वे महिलाओं के अधिकारों के लिए भी खड़ी हुईं। इसी तरह, एनी बेसेंट ने भारतीय राष्ट्रवाद को मजबूत करने में अपना योगदान देते हुए महिलाओं के लिए समान अधिकारों और अवसरों की मांग की। उषा मेहता एक गुप्त रेडियो स्टेशन की संचालिका थीं, जिन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन को आवाज़ देने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महादेवी वर्मा एक प्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका थीं। उन्होंने 'चांद' नामक एक पत्रिका का संपादन किया, जो साहित्य और संस्कृति पर केंद्रित थी।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की यात्रा लंबी और संघर्षों से भरी रही है। इस लड़ाई में जहाँ पुरुषों ने अपनी भूमिका निभाई, वहीं महिलाओं ने भी कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग किया। आजादी के आंदोलन में महिलाओं ने अनेक रूपों में योगदान दिया, जिसमें पत्रकारिता भी शामिल थी। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष सिर्फ भारतीय इतिहास का ही नहीं, बल्कि महिला पत्रकारिता के विकास के लिए भी एक महत्वपूर्ण दौर था। इस कालखंड में महिला पत्रकारों ने न सिर्फ स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दिया, बल्कि महिलाओं के अधिकारों और उनकी सामाजिक स्थिति में जागरूकता लाने में भी महत्वपूर्ण भागीदारी निभाई। स्वतंत्रता संग्राम के समय में महिला पत्रकारिता ने मीडिया में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को न केवल बढ़ाया, बल्कि समाज में महिलाओं की भूमिका और उनके स्थान को नई परिभाषा दी। इस तरह, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिला पत्रकारों का योगदान सिर्फ राष्ट्रीय संघर्ष में ही महत्वपूर्ण नहीं था, बल्कि यह लैंगिक समानता और महिला अधिकारों की दिशा में भी एक उल्लेखनीय कदम था।

महिला सहभागिता और सामाजिक परिवर्तन : महिला पत्रकारिता ने निरक्षर महिलाओं की त्रासदी और उनके परिवारों द्वारा अनुभव की जाने वाली अकारण कठिनाइयों को समय-समय पर उजागर किया है। इससे उपेक्षित क्षेत्रों में जागरूकता आई और ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में कई सामाजिक-आर्थिक बुराइयों का मुकाबला करने में सहायता मिली। महिलाओं की मीडिया और पत्रकारिता में सक्रिय भागीदारी से नागरिक पत्रकारिता को बल मिला है, और जब सही और सटीक जानकारी का प्रसारण होने लगा, तब समाज में जागरूकता और बदलाव आना शुरू हुआ। यह समाज के सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक प्रभाव के बारे में जानकारी देने में एक वरदान साबित हुआ। महिला पत्रकारों ने सिर्फ सामाजिक कलंकों को दूर नहीं किया, बल्कि समाज के लिए एक जरूरी भूमिका निभाने में अपनी क्षमता का परिचय भी दिया।

हमारे देश के कई प्रसिद्ध पत्रकारों के कारण ही विभिन्न सरकारों ने कुपोषण और महिला भ्रूण हत्या से लड़ने के लिए बड़े उपाय शुरू किए। दिसंबर 2012 में राष्ट्रीय राजधानी में हुए कुख्यात निर्भया गैंग रेप मामले के बाद, ऐसे घृणित अपराधों के अपराधियों के खिलाफ आवाज तेज हो गई। शोभा डे, सागरिका घोष, बच्ची ककरिया, मोहुआ चटर्जी, अनुजा जैसवाल, और अन्य प्रसिद्ध महिला पत्रकारों द्वारा राष्ट्रीय मीडिया में की गई बड़ी कवरेज के कारण बलात्कार के लिए सजा को पहले निर्धारित जेल की अवधि से मृत्युदंड में संशोधित किया गया[2]। साथ ही, इन महिला पत्रकारों ने सरकार को राजी किया कि नियोक्ता देश के किसी भी हिस्से में काम कर रही महिलाओं को विशेष सुरक्षा प्रदान करें।

महिलाएँ और भारत का स्वतंत्रता संग्राम : यह कहना निश्चित रूप से अनुचित होगा कि भारतीय महिला पत्रकारों का उदय केवल स्वतंत्रता के बाद हुआ। ब्रिटिश शासन के दौरान भी महिला पत्रकारों ने पत्रकारिता में अहम भूमिका निभाई, लेकिन उनके योगदान को अक्सर अनदेखा किया जाता था। 1850 के दशक से ही, अनेक भारतीय महिलाओं ने महिला-केंद्रित पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया, जिनका योगदान वास्तव में प्रेरणास्पद रहा है। इन पत्रिकाओं में स्वतंत्रता के मार्ग पर चलते हुए अनेक अज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन मिलता है, जो विभिन्न स्थानों से संकलित किए गए थे।

19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में, महिला पत्रकारों की संख्या में वृद्धि हुई। संभवतः देश की पहली कामकाजी महिला पत्रकार, सुश्री मुंशी का जन्म 1919 में मुंबई में हुआ था और उन्होंने 'द ब्लिट्ज़' सहित विभिन्न समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में काम किया था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, मुंशी ने ग्रेट ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी (CPGB) में शामिल होकर फासीवाद की हिंसा और क्रूरता के खिलाफ पार्टी के अभियानों में भाग लिया। कई वर्षों तक वह सीपीआई के मुखपत्र 'कलंतर' को प्रकाशित करने वाले बोर्ड की प्रमुख थीं और पार्टी की सक्रिय सदस्य थीं। हेमन्त कुमारी देवी चौधरानी का जन्म 1868 में हुआ था। वह 'सुगृहणी' नामक पत्रिका की संपादक बनीं, जिसमें उस समय महिला सशक्तिकरण पर कहानियाँ छपती थीं। 'सुगृहिणी' के प्रथम अंक में उन्होंने संपादकीय में एक विशेष संवाद लिखा था। प्रस्तुत है उसके अंशः ओ मेरी प्रिय बहनों, अपने दरवाजों को खोलो और देखो कौन/ तुमसे मिलने आया है। यह आपकी बहन 'सुगृहणी' है। यह आपके/ पास इसलिए आई है क्योंकि आप पर अत्याचार हो रहा है, आप/ अशिक्षित हो और एक बंधन में बंधी हुई हो।[5]

मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल (सिस्टर निवेदिता) का जन्म 28 अक्टूबर, 1867 को आयरलैंड में हुआ था। उनके परिवार का आयरिश स्वतंत्रता संग्राम से मजबूत संबंध था। निवेदिता का पत्रकारिता करियर डेढ़ दशक से अधिक समय तक चला। वह अक्सर कई पेन नामों के तहत लेख लिखती थीं। विभिन्न विषयों से संबंधित उनके प्रारंभिक लेख छोटी क्षेत्रीय ब्रिटिश पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। सिस्टर निवेदिता न्यू इंडिया, द बंगाली, ईस्ट और वेस्ट, सिंध जर्नल, हिंदू, बालभारती, अमृत बाजार पत्रिका, स्टेट्समैन, एडवोकेट, ट्रिब्यून, मराठा, टाइम्स ऑफ इंडिया, और बॉम्बे क्रॉनिकल, डॉन, इंडियन रिव्यू, मॉडर्न रिव्यू, प्रबुद्ध भारत, हिंदू रिव्यू, मैसूर रिव्यू, बिहार हेराल्ड जैसे प्रकाशनों के लिए नियमित लिखती थीं[6]।

एनी बेसेंट (1847-1933), जो 1907 से 1933 तक थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष थीं, अपने व्यक्तित्व के कई चमकीले पहलुओं के लिए जानी जाती थीं। वह एक प्रतिष्ठित वक्ता, मानवाधिकारों की चैंपियन, शिक्षा के लिए एक एडिफिस, एक परोपकारी, और एक लेखिका के रूप में थीं, जिन्होंने तीन सौ से अधिक पुस्तकें और पैम्फलेट लिखे थे। 1913 में एनी बेसेंट का भारतीय राजनीति में परिचय हुआ और उन्होंने देश के स्वराज के लिए आह्वान की अगुवाई की। अंततः, उनके द्वारा आयोजित आंदोलन भारत भर में फैल गया। 'ऑल इंडिया होम रूल लीग' के माध्यम से, उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दो विभाजित खंडों को 1907 के बाद से एकजुट किया। इसके अलावा, उन्होंने दो पत्रिकाएँ स्थापित कीं: 'द कॉमनवेल्थ', एक साप्ताहिक पत्रिका जिसमें राष्ट्रीय सुधार के मुद्दों पर चर्चा की गई, और 'न्यू इंडिया', एक दैनिक पत्रिका जिसने स्वराज और क्रांति का प्रचार किया और पंद्रह वर्षों तक भारतीय पत्रकारिता को क्रांतिकारी बनाया[7]। भारती एक पारिवारिक पत्रिका थी जो 1877 में ज्योतिरिन्द्रनाथ टैगोर द्वारा शुरू की गई थी और सबसे पहले इसका संपादन द्विजेंद्रनाथ टैगोर ने किया था। इसके बाद ग्यारह वर्षों तक उनकी बेटी स्वर्णकुमारी ने संपादक का कार्यभार संभाला और पत्रिका की विशिष्टता को बढ़ाने के लिए कड़ी मेहनत की।[8]

महिला पत्रकारों का उदय : यदि हम भारत में समाचार चैनलों, अखबारों, या पत्रिका संगठनों को देखें, तो हम पाते हैं कि वहां कई महिलाएँ एंकर, संपादक और पत्रकार के रूप में काम करती हैं। इससे पता चलता है कि महिलाओं ने भारत में पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालाँकि, यह भी एक सच्चाई है कि महिलाएँ अभी भी एक ऐसे बिंदु पर हैं जहाँ से उन्हें लंबा रास्ता तय करना है। 1960 के दशक में, महिलाओं ने सक्रिय रूप से पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। पहले मध्य और उच्च-मध्य वर्ग की महिलाएँ

ही इस पेशे के लिए प्रशिक्षित होती थीं, लेकिन 1980 के दशक से यह बदल गया। महिलाएँ पत्रकारिता में अधिक सक्रिय हो गईं। जोसेफ (2000) के अनुसार स्वतंत्र भारत में महिला पत्रकारों के उदय और महिला आंदोलन के बीच के संबंध को, स्वतंत्रता के प्रारंभिक दिनों से लेकर आज तक, चार अवधियों में बांटा जा सकता है। इसका पहला चरण 1947 में शुरू हुआ और 1960 के दशक तक जारी रहा; दूसरा चरण 1960-1970 के शुरुआती वर्षों तक चला; तीसरा चरण 1975 से 1985 तक चला; और इसका चौथा चरण 1990 में शुरू हुआ और आज भी जारी है।[9]

पहला चरण : स्वतंत्रता के पहले वर्ष ने महिलाओं के लिए एक नए युग का आरंभ किया। 26 जनवरी 1950 को जब भारत ने अपना संविधान लागू किया, उसने अपने लोगों से वादा किया कि सरकार उनके समाज का पुनर्निर्माण सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक न्याय के सिद्धांतों पर करेगी। परिणामस्वरूप, प्रस्तावना नागरिक समानता के अवसर की गारंटी देती है। अनुच्छेद 15 नागरिकों को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर राज्य द्वारा हर प्रकार के भेदभाव से सुरक्षित करता है। उसी अनुच्छेद में, राज्य महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान बना सकता है जो समान अवसर का उल्लंघन नहीं करते। अनुच्छेद 39 में निर्देशित किया गया है कि राज्य पुरुषों और महिलाओं के लिए समान काम के लिए समान वेतन की नीति बनाएगा, और यह भी निर्देशित करता है कि पुरुषों और महिलाओं को अलग नहीं किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 42 आगे यह कहता है कि राज्य मानवीय कार्य परिस्थितियों और मातृत्व अवकाश को सुनिश्चित करेगा। इसके अलावा, भारतीय संविधान की मौलिक अधिकारों की गारंटियों ने सामाजिक, राजनीतिक, और कानूनी सीमाओं और अन्यायों को हटा दिया है।[10]

स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों और स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, महिलाओं पर रिकॉर्ड्स और कार्य दिखाते हैं कि भारतीय महिलाएँ पुरुषों के करियर जैसे पत्रकार, वकील, प्रबंधक, उद्यमी आदि के बजाय 'स्त्रैण' करियर जैसे कि नर्स, शिक्षक, सार्वजनिक सेवक (सहायक पदों पर), सामाजिक कार्यकर्ता आदि को पसंद करती थीं। कमला मानकेकर दिल्ली के प्रमुख समाचार पत्रों में से एक में काम करने वाली कुछ महिलाओं में से एक थीं। 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' में शामिल होने से पहले उन्होंने कुछ महीनों के लिए 'इंडियन न्यूज क्रॉनिकल' के लिए काम किया था। मानकेकर बताती हैं कि द स्टेट्समैन में दो महिलाएँ थीं: राज चावला जो डेस्क देखती थीं और सिनेमा समीक्षक अमिता मलिक जिन्होंने देश के पहले रेडियो कॉलम, 'लिसनिंग पोस्ट' की शुरुआत की थी। प्रमिला कल्हान ने 'द हिंदुस्तान टाइम्स' में योगदान दिया, 'द इंडियन एक्सप्रेस' की अरुणा मुखर्जी और अमृता रंगास्वामी पहली महिला सहायक संपादकों में से थीं।[11]

दूसरा चरण :1960 से लेकर 1970 के शुरुआती वर्षों तक, महिला पत्रकारों और महिला आंदोलन की दूसरी लहर के बीच के संबंध का दूसरा चरण ट्रैक किया जा सकता है। 1960 से लेकर आज तक, काफी संख्या में महिलाएँ मुख्यधारा के मीडिया में प्रवेश कर चुकी हैं। सामान्य तौर पर महिलाओं द्वारा शिक्षा के विकास के अलावा, देश भर के कई संस्थानों में पत्रकारिता विषय की उपलब्धता भी एक कारक था जिसने महिलाओं को इस करियर में प्रवेश करने के लिए प्रेरित किया। जोसेफ (2000) के अनुसार, यह पाठ्यक्रम उन शिक्षित महिलाओं के लिए आकर्षक था जो नियमित कार्यों का अनुसरण करना नहीं चाहती थीं। उनके अनुसार, इस युग की कई महिला पत्रकारों, जिनमें प्रभा दत्त, ज्योत्सना कपूर, और राजिया इस्माइल शामिल हैं, ने पत्रकारिता में डिग्री प्राप्त की थी। वे चंडीगढ़ में पंजाब विश्वविद्यालय के पत्रकारिता में परास्नातक डिप्लोमा कार्यक्रम में नामांकित थे। बची ककरिया ने भी मुंबई में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रवेश से पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक पत्रकारिता कार्यक्रम पूरा किया था कूमी कपूर और दीना वकील ने विदेश में पत्रकारिता की पढ़ाई के लिए यात्रा भी की।[12]

तीसरा चरण : महिला पत्रकारों और महिला आंदोलन की दूसरी लहर के बीच का तीसरा चरण लगभग 1975-1990 के वर्षों के दौरान फैला हुआ था। वर्ष 1977 भारत और दुनिया भर की महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इसे संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष माना गया था।[13] महिला पत्रकारों के महिला मुद्दों को बढ़ावा देने के प्रयास कभी अलग-थलग नहीं थे। वास्तव में उन्हें फिल्मकारों, नाटककारों और पटकथा लेखकों द्वारा सहायता प्राप्त थी, जो

महिला मुद्दों पर भी शिक्षित थे। इस अवधि के दौरान कई मीडिया विशेषज्ञों ने प्रेस में महिला पत्रकारों के योगदान की सराहना की। उनके अनुसार, इस काल की महिला पत्रकार न केवल अपने रचनात्मक काम के प्रति ईमानदार और गंभीर थीं, बल्कि उन्होंने खुद को पहले दर्जे की शीर्ष महिला लेखिकाओं के रूप में स्थापित किया था।[14]

वर्तमान चरण : महिला पत्रकारों और महिला आंदोलन के बीच का वर्तमान चरण 1990 में शुरू हुआ। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हा राव द्वारा अपनाई गई नई आर्थिक रणनीति, निजीकरण और उदारीकरण पर अधिक ध्यान दिया गया। इस अवधि में पत्रकारिता में महिलाओं के शामिल होने में सबसे महत्वपूर्ण उछाल देखा गया।[15] लिंग भेदभाव कम होने की स्थिति में इस क्षेत्र में प्रवेश करने की इच्छुक महिलाओं को आसानी हुई । पत्रकारिता में स्थिति अन्य पेशों की तरह ही है, जहाँ महिलाएँ देश के अधिकांश हिस्सों में व्यापक रूप से स्वीकार की जाती हैं और विभिन्न प्रकार के काम करती हैं। शोध के अनुसार अनेक पूर्ववर्तियों के विपरीत, इस युग की महिला पत्रकार लगभग सभी विषयों को समेट लेती हैं, जिसमें राजनीति, अर्थशास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय मामले, कला, संस्कृति, मनोरंजन, अपराध, खेल आदि शामिल हैं। वे अपने पुरुष सहकर्मियों के साथ पूर्णकालिक कर्मचारी, फ्रीलांसर और कॉलमनिस्ट के रूप में काम करती हैं। इसके अलावा, इस अवधि में कई वरिष्ठ महिला पत्रकार हैं जो संपादक के रूप में काम करती हैं।

निष्कर्ष : कुछ वर्षों पहले तक, मीडिया में गिनी-चुनी महिलाएँ ही थीं। लेकिन आज स्थिति अलग है। आज मीडिया जगत का कोई ऐसा कोना नहीं है जहां महिलाएँ आत्मविश्वास और कुशलता से नेतृत्व नहीं कर रही हों। वर्षों से, महिला आवाजें प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, और इंटरनेट पत्रकारिता में मजबूती से उभरी हैं। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाएँ न केवल देश की स्वतंत्रता के लिए बल्कि समाज में सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए भी आगे आई थीं। कई महिला पत्रकारों ने ब्रिटिश राज के अत्याचारों के खिलाफ अपनी आवाज उठाई और समाज के मुद्दों, विशेषकर महिलाओं और बच्चों से संबंधित मुद्दों को उठाया। जैसे-जैसे उनकी पत्रकारिता के क्षेत्र में भागीदारी धीरे-धीरे बढ़ने लगी, महिलाओं और बाल अधिकारों से संबंधित मुद्दे मुख्यधारा की पत्रकारिता में अक्सर नोटिस किए जाने लगे। तब से पत्रकारिता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी में कई गुना वृद्धि हुई है।

संदर्भ सूची

1. नटराजन, एस. (1981). हिस्टट्री ऑफ द प्रेस इन इंडिया. नई दिल्लीः एशिया पब्लिशिंग हाउस।
2. एएनआई (2013, अगस्त 23). https://www.indiatoday.in/india/west/story/photojournalist-gangraped-in-mumbai-shobhaa-de-sri-sri-ravi-shankar
3. शुक्ला, एस. (2022). https://www.apnimaati.com /2022/09/blog-post_72.html
4. चक्रवर्ती, यू. (2001). अल्तेकेरियन अवधारणा के परे : प्रारम्भिक भारतीय इतिहास में जेंडर संबंधों की नई चाल. साधना आर्या, जिनी लोकनीता और निवेदिता मेनन में, नारीवादी राजनीति (पृ. 127-136). नई दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.
5. https://hindi.feminisminindia.com/2022/06/01/hemant-kumari-devi-profile-hindi/
6. लोहानी, वी. (2017). https://thewire.in/gender/scientist-nun-sister-nivedita-made-sure-
7. दुबे. ए. और कुमारी. आर. (1994). वीमेन पार्लियामेंटेरियन्स. नई दिल्लीः हर-आनंद पब्लिकेशन।
8. https://mani-group.com/blog/swarnakumari- devi
9. जोसेफ, ए. (2000). वीमेन इन जर्नलिज्म. नई दिल्लीः कोनार्क पब. प्रा. लिमिटेड।
10. देसाई और मैथ्रेयी (1987). वीमेन एंड सोसाइटी इन इंडिया. अजंता पब्लिकेशन।
11. किरण, डी. (1985). स्टेट्स एंड पॉजीशन ऑफ वीमेन इन इंडिया. नई दिल्लीः शक्ति बुक्स।
12. जोसेफ, ए. (2000). वीमेन इन जर्नलिज़म. नई दिल्लीः कोनार्क पब. प्रा. लिमिटेड।
13. किरण, डी. (1985). स्टेट्स एंड पॉजीशन ऑफ वीमेन इन इंडिया. नई दिल्लीः शक्ति बुक्स।
14. ईश्वर, एस. (1984). प्रेस कवरेज ऑफ वीमेन एंड वीमेंस कंसर्न. नई दिल्लीः लाइटहाउस पब्लिकेशन्स।
15. ईश्वर, एस. (1984). प्रेस कवरेज ऑफ वीमेन एंड वीमेंस कंसर्न. नई दिल्लीः लाइटहाउस पब्लिकेशन्स।

एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

दलित स्त्री कविता का प्रतिरोधी स्वर

डॉ रीनाकुमारी वी एल

स्त्री अस्मिता के लिए संघर्ष सदियों से चलता रहता है। फिर भी पुरुष वर्चस्व वाले समाज एवं व्यवस्था में स्त्री को हमेशा अधीन रखने का प्रयास किया जा रहा है। आज स्त्री अपने हिस्से के सूरज, अपनी ज़मीन को माँगने लगी है। वह समाज की चुनौतियों को स्वीकार कर आगे बढ़ने की कोशिश कर रही है। वह हर कहीं अपना पदछाप छोड़ने लगी है। हाशिएकृत स्त्री के मुख्य धारा में आने का संघर्ष स्त्री विमर्श के मूल में है। स्त्री होना अभिशाप है तो दलित स्त्री होना दोहरा अभिशाप है। इस जातीय आइडेंटिटी से मुक्तहोकर एक स्त्री बनकर जीना वह चाहती है।

समकालीन दलित स्त्री कवियों में रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे, रजत रानी मीनू, कौशल पवार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। दलित कविता त्रास, दुख, संघर्ष और आक्रोश की कविता है तो दलित नारी की कविता विरोध, नकार आदि से युक्त मुक्ति मार्ग की तलाश करने वाली कविता है। इन कविताओं के द्वारा वे समझने-समझाने की कोशिश करती हैं कि दलित स्त्रियाँ अपनी गुलामी को किस हद तक नकारती हैं। ज्योतिबा फुले का कथन है- "जो सहता है वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह सकता है। अतः राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नहीं।"[1] साहित्य समाज को प्रतिबिंबित करता है तो दलित कविताएँ दर्द की अनुभूति को अभिव्यक्त करती हैं।

समकालीन दलित महिला कवियों में रजनी तिलक एवं सुशीला टाकभौरे की अलग पहचान है। उनकी कविताओं में नारी मुक्तिका स्वर गूँज रहा है।

'पदचाप' रजनी तिलक का एक महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है। काव्य की भूमिका में रजनी तिलक ने लिखा है- "जाति, लिंग भेदभाव की सबसे ज्यादा मार पड़ी दलितों व स्त्रियों पर विशेष तौर पर दलित स्त्रियों पर। आज़ादी की स्वर्ण जयंती और मानव अधिकार की घोषणा के पचास वर्ष बीत जाने पर भी दलित स्त्रियों की हालत में विशेष परिवर्तन नहीं आया। शिक्षा, राजनीती, प्रशासनिक सेवा, वाणिज्यिक क्षेत्र में उसकी पहुँच नगण्य है। अगर वो कहीं है तो शहर की स्लम, धूल व बदबूदार, दूर-दराज गाँव-देहातों के बाहर बनी बस्तियों में। इन बस्तियों में शौचालय, पीने का पानी, बच्चों को पढ़ाने के लिए प्राथमिक स्कूल, प्राथमिक चिकित्सालय, यहाँ तक की गाँव को जोड़ने वाली सड़कें तक उपलब्ध नहीं है।"[2] रजनी तिलक सावित्री बाई फुले को स्त्री-मुक्ति की पहली शिक्षिका मानती हैं। वे 'स्त्री मुक्तिकी मशाल हो' कविता में सावित्री बाई फुले को क्रांति सूर्य के रूप में देखती हैं। स्त्री को भोग्या बनाने की परंपरा पर सावित्री ने प्रहार किया। उन्होंने पहली बार लड़कियों के लिए शिक्षा का रास्ता खोला है। पंक्तियाँ हैं - "सावित्री बाई फुले /तुम्हारा जीवन एक कसौटी/तुम्हीं पहली शिक्षिका/बनी स्त्री-मुक्ति की लौ,/अभाव और कष्टों में रहकर/संचेतना का बीज अंकुरित किया।"[3]

दलित स्त्री समाज से, परिवार से, जातीयता से पीड़ित है। वह स्त्री हो या बच्ची, शोषण से मुक्त नहीं। आजकल स्त्रियों के साथ सब कहीं अन्याय और अत्याचार ही हो रहे हैं। छोटी बच्ची हो या भिखारिन, स्त्री ही सब कहीं प्रताड़ित होती रहती है। 'खेला जाता हैं' कविता की पंक्तियाँ हैं - "मासूम कलियों को खिलने से पहले/बचपन में ही लूटा जाता हैं।/कोमल मधुर मुस्कान को/वासना की आग में खींचा जाता है/रामायण हो, महाभारत हो/या आधुनिक भारत।"[4]

स्त्री हमेशा घर के कायदे, कानून में बंधी हुई है। सदियों से वह भोग के लिए एक उपकरण मात्र बन गई है। अपने चारों तरफ होने वाले बातों से वह परिचित है। पर खुद बोलने की हिम्मत जुटा नहीं पाती। क्योंकि सदियों से उन्हें दबाने का, चुप करने का षड्यंत्र चल रहा है। मैं कौन हूँ जैसा प्रश्न उनके चिंतन में है पर यह प्रश्न स्वयं की तलाश नहीं, जो नारी मुक्ति का अहम प्रश्न है।

"सोचती हूँ /कौन हूँ मैं ?/मेरा अस्तित्व है क्या ?/मैं कहाँ से और क्यों आयी हूँ/धीरे-धीरे क्या मैं भी ख़ाक हो जाउँगी/ क्या मैं भी चुपचाप/उनके पाँवों की धूल हो जाउँगी ?"[5]

आज स्त्री घर की चौखट से, अपने पाँव के बंधन को तोड़कर, परदे के पीछे से आगे आई है। स्वतंत्रता की चाह आज उनके शरीर के कण-कण में है। जातीयता के साथ-साथ स्त्री होने का दर्द भी सहन करके वह कठोर बन गयी है। कभी न हिम्मत हारने वाली एक निडर स्त्री की तरह आज वह संसार में उतर रही है। 'करोड़ों पदचाप हूँ' कविता में लिखा है - "मैं दलित अबला नहीं/नए युग की सूत्रपात हूँ/सृष्टि की जननी हूँ/मेरा अतीत, बंधनों का /गुलामी के इतिहास/युगों-युगों के दमन का वहन है/अब मैं छोड़ दूँगी गुलामगिरी/तोड़ दूँगी बेडिया...... ?"[6]

रजनी तिलक के लिए ब्राह्मणवाद असमानता का पर्याय है और मनुवाद जातिवाद का। इसलिए समाज में व्याप्त जाति भेद के लिए वे इन दोनों को जिम्मेदार मानती हैं। इसलिए वे कहती हैं, जाति विहीन समाज के निर्माण के लिए दलितों को ब्राह्मणवाद से लड़ना होगा, जो असमानता के रूप में उनके भीतर मौजूद है -"असमानता ही है जिनका आधार/ ब्राह्मणवाद का वटवृक्ष/ना फले-फूले चारों ओर/लड़ना है हमें असमानता से/गढ़नी है भाषा, बढ़ाना है विज्ञान/तभी बनेगा जाति विहीन समाज।"[7]

स्त्री को बाज़ार की चीज मानने वाले पुरुष वर्चस्ववादी समाज में हर स्त्री मर्दों के लिए योनि मात्र है। इसके खिलाफ आवाज़ उठाकर रजनी तिलक कहती है अपना शरीर अपना ही है। इस पर अधिकार जमाने का हक़ किसी को नहीं हैं। अगर कोई अधिकार जमाने आता है तो हमें दाँत और नाखून से लड़ना चाहिए। अपनी देह की नियंत्रक हम स्वयं ही हैं। 'हर औरत एक योनि है' कविता की पंक्तियाँ हैं- "हमारा शरीर हमारा है/हमारी भावनाएँ हमारी हैं/हमारी आज़ादी इच्छाएँ/ पतंग-सी उड़ती महत्वाकांक्षाएँ/सब हमारी हैं/अपनी देह की नियंत्रक हम खुद है।"[8]

जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में "रजनी की कविताएँ यथार्थ में बंधन से मुक्ति का आह्वान है, जिनमें अतीत के प्रति आक्रोश, वर्तमान के प्रति असंतोष और भविष्य के प्रति आशा का संचार है।"[9]

दलित साहित्य लेखन में सुशीला टाकभौरे की अहम् भूमिका रही है। वे लगातार दलित और दलित स्त्री जीवन को अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में उजागर कर रही हैं। उनके लेखन में दलित का वही दुख नज़र आता है जो उन्होंने स्वयं झेला है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों के सामाजिक,धार्मिक,आर्थिक तथा शैक्षिक शोषण के चित्रण के साथ उच्च वर्ग के प्रति विद्रोह को भी स्पष्ट किया है। उनके लिए कविता है- "मेरी कविता/ कुदाल है, हथियार है/फटकार है, ललकार है/दीन दुखियों के लिए/न्याय की पुकार हैं।"[10]

दलित स्थिति को स्पष्ट करती हुई सुशीला टाकभौरे कहती हैं- "जो दलित रेखा से नीचे के लोग है वह इक्कीसवीं सदी के काल में अपनी पुरानी स्थिति से ज़रा भी उपर नहीं उठ सके हैं। अभी भी उनकी स्थिति वही है जो पहले थी।"[11]

दलित शोषण आज भी जारी है। प्रतिदिन ऐसी घटनाएँ घट रही हैं। सवर्ण जातियाँ आज भी दलितों को भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार करती हैं। कहीं उन्हें जलाया जाता हैं तो कहीं उनकी बस्तियों में आग लगा दी जाती है। कानून और पुलिस की सुरक्षा व्यवस्था सवर्णों की मदद करती है। दलितों को कहीं न्याय नहीं मिलता। सवर्ण समाज हमेशा से ही अपने को उच्च और शेष सभी को निम्न बनाकर रखना चाहता है। 'यातना के स्वर' कविता की पंक्तियाँ हैं - "दलित-पीड़ित, अपाहिज पीढ़ियाँ /न कुछ समझ पाई, न कुछ कह पाई/अपना दुख दर्द/अन्याय अत्याचार को समझती रही/जीवन का यथार्थ।"[12]

दलित जातियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी सफाई के पेशे से जुड़ी हैं। अपने आत्म सम्मान से अनभिज्ञ वे उन्नति का मार्ग समझ नहीं पाती हैं। वे अपनी उन्नति के विरोधी दुश्मनों से ही अपनी प्रगति के लिए मदद मांगती रहती हैं। उँची जाति के लोग उनको कभी उपर उठने भी नहीं देते। हमेशा उनके साथ भ्रमजाल फैलाकर रखते हैं।

"सदियों की गुलामी है/ऊपर देखने की आदत ही नहीं है/ कैसे देखेंगे क्रान्तिसूर्य को !/कैसे समझेंगे/जागृति और परिवर्तन के प्रकाश को !"[13]

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री मुक्ति नारी स्वतंत्रता तथा उनके अधिकारों को लेकर चाहे कितने बड़े दावे किए जाये, नारे लगाये जाये सब व्यर्थ है। जब तक नारी स्वयं इस तथ्य को नहीं समझती तब तक उसकी प्रगति नहीं हो सकती। दलित स्त्री 'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' की परंपरा को चरितार्थ करती चली आयी है। 'साहस' की पंक्तियाँ हैं - "सागर बड़ा है/उसका तट बड़ा है/उसी तरह / हमारी बेड़ियाँ /हमारी रूढ़ियाँ भी बड़ी हैं।/हमें /सागर के पल्लर की तरह /लाट की तरह /हर क्षण /अपनी बेड़ियों को काटना है।"[14]

भारतीय समाज में यथास्थितिवाद के खिलाफ परिवर्तन की आवाज़ है। लेकिन यह परिवर्तन अपने आप नहीं होगा। इस के लिए पीड़ित एवं शोषित लोगों को संघर्ष करना होगा। 'मेरा अस्तित्व' कविता की पंक्तियाँ हैं- "मगर /मैं निश्चिन्त नहीं रह सकती /अपने अस्तित्व की चिन्ता में डूबी /ललकारती हूँ पूरी कौम को /अब तो जागो!"[15]

जितने भी दलित महिलाएँ हैं उनकी ज़िन्दगी चक्की में पिसते अन्न की तरह है। घर, परिवार में उलझी हुई स्त्री कभी दुनिया के बारे में और अपने बारे में नहीं सोचती। लेकिन आज वह पंख कटे हुए पक्षी की तरह जीना नहीं चाहती, हमेशा पंख फड़फड़ाती रहती है। कभी न हिम्मत हारने वाली एक निडर स्त्री की तरह वह जाग चुकी है। 'पंख मेरे फड़फड़ाते हैं' कविता की पंक्तियाँ हैं- "स्वप्न मेरे पंख हैं/ विचार मेरे पंख हैं /निर्बाध गति से बढ़ सकूँ/अरमान मेरे पंख हैं।/पंख जिसके पास हैं /वह घोंसले तक सीमित नहीं / आकाश को छूने का दम/हर समय उसके पास है।/लक्ष्य पाने के लिए /धरा गगन की दूरियों को /मैं पार करना चाहती हूँ।"[16]

दलित स्त्री समाज में अपना अस्तित्व बनाने में जुड़ी है। वह खुद पहचान चुकी है कि इस अंधकार की मुक्ति का मार्ग सिर्फ शिक्षा ही है। क्यों कि शिक्षा के बिना व्यक्तित्व की सार्थकता एवं परिपूर्णता संभव नहीं। शिक्षा स्त्री सशक्तीकरण की कुंजी है। इसलिए सुशीला टाकभौरे जी कहती हैं- "मान सम्मान में /ज्ञान विज्ञान में /पीछे नहीं हैं औरत /पूरे विश्व को मुट्ठी में रखकर समझेगी /तभी वह मर्द की तरह जी सकेगी।"[17]

वास्तव में सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में हिन्दू धर्म से जुड़ी दलित समाज की समस्याओं तथा दलित स्त्री के संत्रास को भी उजागर किया है। दलित समुदाय को अपनी स्थिति का एहसास कराती हुई कहती हैं-"अभी भी समय है जाग्रत होकर लाभ लेने का अन्यथा भविष्य और अधिक अंधकार पूर्ण होने की संभावना हैं।"[18]

संक्षेप में कहें तो सुशीला टाकभौरे और रजनी तिलक ने अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री की युगों से होती हुई पीड़ा को वाणी दी है। अपने अनुभव के आधार पर जागृति का शंखनाद बजाने का आह्वान वे दोनों करती हैं। उनकी कविताओं में जागृति का स्वर है, क्रान्ति का आह्वान है और अन्याय के खिलाफ आक्रोश है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रमणिका गुप्ता, युद्धरत आम आदमी, दलित चेतना विशेषांक 36, पृ.05
2. रजनी तिलक,   पदचाप, निधि बुक्स, पटना, प्र.सं 2008, पृ. XI
3. वही, स्त्री मुक्तिकी मशाल हो, पृ.02
4. वही, खेला जाता हैं, पृ. 43
5. वही, मैं कौन हूँ , पृ.16
6. वही, करोड़ों पदचाप हैं , पृ.45
7. वही, छद्म से बचा नहीं पाती , पृ.15
8. वही, हर औरत एक योनी है , पृ.62
9. मानवाधिकार शिक्षण प्रतिष्ठान- मानवाधिकारः एक परिचय, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं 2009,पृ.24
10. सुशीला टाकभौरे, कविता धारा, पृ.27
11. अनीता भारती, समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध, स्वराज प्रकाशन, 2013, पृ.40
12. सुशीला टाकभौरे, यातना के स्वर , पृ.119
13. वही, हमारे हिस्से का सूरज , पृ.117
14. वही, सागर , पृ.182
15. वही, मेरा अस्तित्व, पृ.123
16. वही, पंख मेरे फड़फड़ाते है , पृ.170
17. वही, वह मर्द की तरह जी सकेगी, पृ.84
18. वही, मनोगत, पृ.18

सह आचार्या एवं विभागाध्यक्षा
हिंदी विभाग
सी अच्चुतमेनोन सरकारी कॉलेज, कुट्टनल्लूर

नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में गीतांजलि श्री के उपन्यासों का अध्ययन

अमला थॉमस

नैतिकता का मतलब है सही गलत की जानकारी। जीवन में क्या अच्छा है, क्या बुरा है इसको बताने के लिए मानव समुदाय के बीच ऐसे सिद्धांतों का निर्माण किया गया है इसको हम नैतिक सिद्धांत या नैतिक मूल्य कहते हैं।अतः नैतिकता यह जानने का तरीका है कि कौन सा कार्य सही हैं और कौन सा कार्य गलत। दूसरे अर्थ में नैतिकता नियमों या दिशा-निर्देशों का वह समूह है जो हमें बताता है कि कौन सा कार्य करना चाहिए और कौन सा कार्य न करना चाहिए।अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग लोगों के बीच सही क्या है, गलत क्या है, इस बारे में अलग-अलग विचार हो सकते हैं। किन्तु यह बात स्पष्ट है कि नैतिक मूल्य का केवल एक ही अर्थ होता है - वह है सर्व हितकारी कामना। सभी लोगों के बारे में अच्छा सोचना और दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करना - नैतिकता का पहला पाठ है।

मानवजीवन का नैतिकता के साथ गहरा संबन्ध है।जिस नैतिक वातावरण में मनुष्य जीवन यापन करता है उस वातावरण के अनुसार उसके व्यक्तित्व का विकास होता है।अतः नैतिक मूल्य संबंधी जानकारी व्यक्तिअपने वातावरण से अर्जित करता है। "नैतिकता अर्जित वस्तु है - मानव अपने समाज से उसकी मर्यादा एवं व्यवस्था के अनुकूल निर्धारित नैतिक नियमों को अपनी चेतना का आधार बनाता है। जिसे दूसरे शब्दों में उसकी नैतिकता कहा जा सकता है। प्रत्येक समाज अपनी व्यवस्था के सुचारु रूप से संचालन के निमित्त एक विशिष्ट प्रकार की आचरण-पद्धति निर्धारित करता है जिसे आचरण - संहिता (code of conduct) के नाम से जाना जाता है।समाज के सदस्यों के आचरण का नियमन करने वाली यह व्यवस्था ही नैतिकता कहलाती है।"[1]

भारत नैतिक मूल्यों के महत्व को आगे बढ़ानेवाला देश है। संपूर्ण विश्व में भारत की ख्याति इसी कारण हुई है।हमारे पौराणिक ऐतिहासिक ग्रंथ हमें नैतिकता का पाठ ही पढ़ाते हैं। "भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि में नैतिकता का जो आधार है, वह इस स्तर पर समान है कि दोनों में व्यक्ति की सत्यता, आस्था और उच्च मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा दिखाई देती है। दार्शनिक स्तर पर थोड़ी-सी जो भिन्नता दिखाई देती है,वह भारतीय और पाश्चात्य दर्शन की धारणाओं में भिन्नता के कारण है।"[2]

पुरुषवर्चस्व समाज ने धर्म को अपने सबसे बड़े हथियार के रूप में उपयोग किया है।उसने अपने अधिकार को जमाये रखने के लिए समाजिक और नैतिक व्यवस्था को अपने इच्छानुसार परिवर्तित किया है।मनुष्य के लिए जो लिखित नियम बनाए गए है वह लिखित नियम उसी रूप में रहता है लेकिन उसने ऐसा अलिखित नियम बना डाला है उसी नियम का अनुसरण हमें मजबूरन करना पड़ता है।

भारत में नैतिकता संबंधी नियम पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा बनाए गये हैं। यह नियम संस्कृति, धर्म, जाति, स्थान और लिंग पर आधारित है। लेकिन अब इन पुराने नियमों के बदलने का समय आ गया है क्योंकि भले ही भारत बेहतर होता जा रहा है, लेकिन लोग अब भी उसी तरह सोचते हैं जैसे वे पहले सोचते थे। परंपरागत रूढ़िगत संस्कारों को छोड़ने के लिए वे तैयार नहीं है। जैसे-जैसे हमारा देश आगे बढ़ता और बेहतर होता जाता है, लोगों के विचारों में भी बदलाव आना और बेहतर होना ज़रूरी है। उस नवीन एवं परिवर्तित समाज के साथ तालमेल बिठाने के लिए सही और गलत के बारे में सोचने के तरीके को लाने की ज़रूरत है।

"नैतिकता किसी भी स्तर पर हो, केवल स्त्रियों के लिए है। ऐसा कौन-सा लक्षण, अवधारणा, निर्भीक, साहसी और अविजित होना चाहिए। इस तथ्य को ऐसे नहीं कहा जाता। जो बलवान, वीर निर्भीक, साहसी और अविजित है पुरुष है। हाँ, निर्बल कायर, डरपोक और हारनेवाले जरूर औरतों की तरह हैं और उन्हें चूड़ियाँ पहनने की सलाह दी जाती है।"[3]

पुरुषसत्तात्मक समाज स्त्रियों से अपेक्षा की जाती है कि वे सभी नैतिक मूल्यों की रक्षा करें और उनका पालन करें। जन्म से ही स्त्रियों को पुरुष-प्रधान समाज द्वारा बनाए

गए कई अलिखित नियमों का पालन करना पड़ता है। लेकिन आज आधुनिक युग में स्थिति बदल गई है।आज स्त्री सोचती है, समझती है और विवेकपूर्ण व्यवहार भी करती है, वे इन अनुचित नियमों का पालन करने को तैयार नहीं है।वे इनके खिलाफ आवाज़ उठाने लगी है, अपना विद्रोह ज़ाहिर कर रही हैं।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में नैतिक मूल्यों के बारे में लिखनेवाली प्रमुख स्त्री लेखिकायें हैं - गीतांजलि श्री, मैत्रेयी पुष्पा,ममता कालिया,चित्रा मुद्‌गल,प्रभा खेतान,मधु कांकरिया आदि।स्त्रीवादी लेखिका गीतांजलि श्री नैतिक मूल्यों के अधःपतन को लेकर बहुत चिंतित है।उनके उपन्यास 'माई', 'तिरोहित' और 'रेत-समाधि' आदि में उन्होंने नैतिक मूल्यों के हनन से उत्पन्न सामाजिक गतिविधियों पर चिंतित है।उन्होंने अपने उपन्यासों में नैतिक मूल्यों के पतन से उत्पन्न अस्तित्वहीनता, सांप्रदायिकता, आतंकवाद जैसे विषयों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

'माई' गीतांजलि श्री का एक चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने रज्जो नामक मध्यवर्गीय परिवार की बहु के घुटन भरी जिंदगी को चित्रित किया है। "माई' स्त्री को परम्परागत दृष्टि से, भूमिकाओं से परिभाषित करने, नई नैतिकता के माध्यम से व्यक्त्त्वि के विस्तार का समझने न समझने के द्वन्द्व का उपन्यास है। यह शाश्वत स्त्री को पहचानने के क्रम में स्वयं को पहचाने का, परम्परा में शामिल होने न होने की कशमकश का आख्यान है और पितृसत्ता के मध्य स्त्री की अपनी जगह की तलाश भी है।"[4]

माई सुनैना और सुबोध की माँ हैं, वह समर्पण की प्रतिमूर्ति है। वह भारतीय गृहणियों का प्रतिनिधित्व करती है। उपन्यास में माई के बच्चे उसको उस घुटन भरे घर के वातावरण से बाहर लाने का प्रयत्न करते है। किन्तु माई एक ऐसा वातावरण में जी रही थी जिस वातावरण के साथ उसने स्वयं तालमेल किया था और उससे वह मुक्तहोना नहीं चाहती थी। इसलिए माई को अपनी स्व का असली रू प क्या है, उसे जानने की न तो इच्छा होती है और न ही ज़रूरत ।

"बाबू की पत्नी, दादा-दादी की सेवारत न बोलनेवाली बहू और सुबोध, सुनैना की बेहद कमजोर 'माई' है, रज्जो नहीं। भूमिका से मुक्तकिए बिना सुनैना 'माई' को ड्योढ़ी से मुक्तकरना चाहती है, सुनैना माई को 'माई' के रूप में पहचानती है 'रज्जो' के रूप में नहीं।"[5]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जीनेवाली माई अपनी बेटी के लिए बेहतर ज़िंदगी चाहती है। वह अपनी बेटी को इस व्यवस्था से बाहर लाने की बहुत कोशिश करती है, लेकिन वह खुद इस व्यवस्था से मुक्तहोने का प्रयत्न नहीं करती है।

पुरुषसत्तात्मक समाज अक्सर लड़का और लड़की में भेदभाव रखते है। इसके फलस्वरूप लड़कियों को अपना मनपसंद विषय पढ़ने के लिए रोक-टोक लगा देते हैं। 'माई' उपन्यास में सुनैना नाच और गाना सीखना चाहती है लेकिन सुनैना के स्कूल में पढ़ाई के अलावा सिर्फ एक विषय था - होम साइंस।सिर्फ सुबोध के स्कूल में ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध थीं। समाज स्त्रियों से यह उम्मीद करता है कि वह खाना बनाना सीखे,बच्चों को संभाले,रसोई की ज़िम्मेदारियाँ उठाये,कपड़ा सिलना सीखे,कम बोला करें,शालीनता से कपड़े पहनें आदि। मगर ये सारी बातें मर्दों के लिए लागू नहीं होते अतः इस प्रकार की बनी बनाई नैतिकता का बोझ सिर्फ स्त्रियों के उपर हैं। "मेरे स्कूल में ऐसी कोई सुविधा न थी, पढ़ाई के अलावा एक विषय था, होम साइंस-पकाना, सिलना, बुनना-जिसमें मेरी रुचि नहीं थी।"[6]

दादा को पता चलता है कि सुनैना शास्त्रीय संगीत सीखने लगी है। "हमें उन्होंने संस्कृत में कुछ सुनाया जिसका मतलब कुछ इस प्रकार था कि गानेवाली और पैरों में घुँघरू पहननेवाली बुरी औरत है और जिसके दाँत थोड़े बाहर को हैं वह अक्लमन्द औरत है।"[7] पुरुषवर्चस्व समाज में मर्द स्त्री के कपड़े या आभूषण देखकर उसके चरित्र संबंधी अपना निर्णय ले लेता है। गानेवाली या नाचनेवाली प्रतिभाशाली स्त्रियों को पुरुष लोग गलत दृष्टि से देखते है।

पुरुषवर्चस्व समाज लड़कियों को खुलकर बोलने की इजाज़त नहीं देते। वे चाहते है कि स्त्री घर के अंतर चुप-चाप अपना जीवन बिताये। "मुझे भी दादा ने ही शहर के मिशन स्कूल में भर्ती कराया था जिसका नाम हमारे गरम-गरम मुल्क में 'सनी साइड कौनवेंट' था ! दादा चाहते थे मैं अंग्रेज़ी सीख जाउँ।पर बोलूँ नहीं ! हिन्दी में भी !"[8] समाज

लड़कों को कभी भी बोलने के लिए मना नहीं करते परंतु लड़कियों को बोलने से मना करते हैं। इसके पीछे की यही सोच है कि स्त्रियाँ घर के भीतर पुरुषों के कहे का अनुसरण करनेवाले गुड़िया मात्र है। वह मनुष्य होते हुए भी मूकपशु का जीवन बिताने को अभिशप्त है।

नवीं-दसवीं कक्षा तक पहुँचते ही सुबोध और सुनैना दोनों मिलकर अड़ गए कि सुनैना भी किसी अच्छे शहर के अच्छे स्कूल में पढ़ेगी।मगर लड़की होने की वजह से दादा और दादी ने मना किया।लड़का और लड़की में भेदभाव करनेवाले समाज की गलत नैतिक मानसिकता को गीतांजलि श्री ने यहाँ दिखाया है।

समाज लड़कियों को अपनी मनपसंद कपड़े पहनने की इजाज़त नहीं देते है। माई उपन्यास में सुनैना को इसी वजह से दिक्कतें हुईं। "यों भी चलते-चलते बुआ कभी मेरा कपड़ा नीचे खींच देतीं, कभी बटन लगा देतीं, कभी मुड़ी आस्तीन सीधी खोल देतीं।बुआ के साथ लगता कि मैं एक बदन हूँ।बुआ के साथ बचपन से जी होता कि बुरका पहनूँ।"[9] समाज स्त्रियों को मजबूर करता है कि वह अपने पूरे बदन को ढक ले। स्त्रियों के पोशाक को हमेशा नैतिकता के मापदंड से तौलने की प्रक्रिया हमारे समाज में चल रही हैं। "बदन ज़रा भी झलकाया न जाए इस पर सभी एकमत थे। लड़की का बदन।औरत का बदन। बदन न हुआ आफत का परकाला हो गया।"[10] स्त्रियों की वस्त्र धारण की विधि पर हमेशा पुरुषवर्चस्व समाज द्वारा निर्मित एक ढाँचा है।समाज में स्त्रियों को नैतिकता का अलिखित नियमों का मजबूरन पालन करना पड़ता है। "बाबू का माई से 'साथ रहो' और दादा का हमसे 'अन्दर जाओ' और दादी का मुझसे 'पैर ढाँपो' के बावजूद ड्योढ़ी में खिंची सीमाओं के भीतर और बाहर भी, लड़कपन दौड़ा ही।"[11] स्त्रियों को जन्म से लेकर कई पाबंदियों का सामना करना पड़ता है।यह पाबंदियां पुरुषों को नहीं होती हैं।

गीतांजलि श्री का 'तिरोहित' उपन्यास समलैंगिक विमर्श पर आधारित है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र चच्चो,ललना और भतीजा है। इनके ज़रिए उन्होंने आज की ज्वलंत समस्या समलैंगिकता पर प्रकाश डाला है। असल में यह स्त्री जीवन के साथ जुड़ी हुई समस्या है।उपन्यास में चच्चो घुटन भरी ज़िंदगी जीती है क्योंकि उसे अपने पति ओम बाबू से पर्याप्त प्रेम नहीं मिलता है और ललना खुलकर जीती है क्योंकि वह अपनी ज़िंदगी अपनी मर्ज़ी के अनुसार बिताती है। हमारी बनी बनाई नीति व्यवस्था में स्त्री को हमेशा घूँघट के पीछे छिप जाने को मजबूर करती है। इस नियम व्यवस्था को यदि कोई स्त्री ललकारती है तो समाज उसका बहिष्कार करेंगे और उसपर कलंक का लांछ्न डालेंगे। इसप्रकार के नियम व्यवस्था का पालन करनेवाली, मूक पशु जैसी स्त्रियाँ ही हमारे समाज में सम्माननीय रहती है। घूंघट एवं पर्दा डालनेवाली स्त्रियाँ ही समाज में सम्माननीय है।ललना अपनी ज़िंदगी अपनी तरीके से जीती है और यह बात मुहल्लेवालों को अच्छा नहीं लगता है।वे ललना को बुरी स्त्री घोषित करते हैं। "यह क्या कि सिर उठा के घुस लेती है किसी के भी साथ, हमारे बेटों को बरगलाने खेलने लगती है आइस-पाइस उनके संग और यह क्या कि दुपट्टा फेंककर, चप्पल उतारकर नंगे पाँव, नंगे सिर, छ्त पर कुहराम मचाए रखती है!"[12]

यह पूरी तरह से स्त्री का फैसला होना चाहिए कि वह अपना सिर ढकना चाहती है या नहीं। हमारे समाज में स्त्री को अपने इच्छानुसार कपडा पहनने की स्वतंत्रता नहीं हैं। मर्दों की स्थिति किंतु वैसा नहीं है।यदि पुरुष अपनी मर्ज़ी के अनुसार कपडा पहनकर चलता है तो उसपर उँगली उठाने के लिए कोई नहीं होंगे।लेकिन स्त्रियों की स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है।अगर स्त्री माननीय पोशाक पहनकर अपना सिर नहीं ढकना चाहती या घुंघट नहीं ओढ़ती तो उसके चरित्र को लेकर सवाल उठ जायेंगे।

पुरुषवर्चस्व समाज में स्त्री संबंधी यही नैतिक व्यवस्था बरकरार है कि पति के बिना पत्नी का कोई अस्तित्व नहीं है।हमारे यहाँ की स्त्रियाँ इस व्यवस्था का समर्थन करती है। अतः भारत में स्त्रियों के लिए जो नैतिक व्यवस्था बनाई गयी है बहुत संकुचित है। यहाँ स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्वीकारते नहीं है। हमारी अलिखित व्यवस्था में यह लिख डाली है कि स्त्रियाँ हमेशा पुरुषों पर निर्भर रहें।

"चिपट गईं आकर औरतें बहनजी से। हाँ बहनजी यह क्या हो गया? तुम बेचारी। क्या करोगी तुम बेचारी? कहाँ जाओगी? कितना क्रूर मज़ाक । घर का जो आधार वही बेकार हो जाए?औरत को एक सूखी रोटी, एक चीथड़ा कपड़ा, एक अपने नाम का साया पति ही तो देता है। हाँ

किस संकट में पड़ गई तुम बहनजी? पर रोना मत बहनजी। यह तुम्हारा प्रताप कि तुम सधवा हो। जैसा भी हो पति साथ है तुम्हारे।"[13]

जब ओम बाबू निश्चेतावस्था में पड़ गये तब मोहल्ले की औरतें आकर चच्चो से यही बताया कि उसे गर्व करना चाहिए कि अब भी वह सधवा है कारण जैसा भी हो उसका पति उसके साथ है।ओम बाबू की इस अवस्था में चच्चो और ललना दोनों मिलकर उसका देखभाल करती है।

समाज में स्त्री को यह सुनना पड़ता है कि यह तुम्हारा प्रताप कि तुम सधवा हो, लेकिन एक पुरुष से लोग ऐसा नहीं कहेंगे। चच्चो की स्थिति यदि एक पुरुष की है तो लोग उसे दोबारा शादी करने के लिए कहेंगे। इसका कारण यह है कि समाज विधुर से यह उम्मीद करता है कि वह दोबारा शादी करे और वंश को आगे बढ़ाए।लेकिन ये ही समाज विधवा स्त्रियों के उपर कई प्रकार की पाबंदियाँ लगाते हैं ताकि वह अपने वैधव्य को ढोकर मृत्यु तक जियें।

'रेत-समाधि' भारत-विभाजन से संबंधित विषय को लेकर लिखा गया उपन्यास है।लेखिका ने इस उपन्यास को पूर्व दीप्ति शैली में लिखी है। उपन्यास के तीन भाग है पीठ, धूप और हद-सरहद। इस उपन्यास का मुख्य पात्र है 'दादी' जिसका नाम है चंद्रप्रभा देवी।वह अस्सी वर्षीय वृद्ध माँ है।दादी एक हिंदू है। वह पाकिस्तान में रहती थी। मगर विभाजन के बाद उसे भारत आना पड़ा और दूसरे नाम और पहचान लेकर जीने को वह मजबूर हो गई।सालों बाद वह पाकिस्तान वापस जाने का प्रयास करती है और सफल हो जाती है।दादी का एक बेटा और बेटी है।

दादी जब साड़ी के बदले अन्य कपड़े पहनने लगी तब उसके बेटे को वह बिल्कुल पसंद नहीं आता है। "देखो सब, न देखा न सुना रहन सहन, और देखो, लसड़ फसड़ कपड़ा और उफ़ अम्मा गिर न पड़े। अच्छी भली साड़ी बाँधती थी और फुर्ती से सारे काम करती थी और अब?"[14] पुरुषवर्चस्व समाज में स्त्रियों को अपनी मनपसंद कपड़े पहनने की स्वतंत्रता नहीं है चाहे वह माँ हो या पत्नी हो या बेटी। गीतांजलि श्री ने 'माई', 'तिरोहित' और 'रेत-समाधि' उपन्यासों में नैतिक खोखलेपन पर इशारा किया है। उनके अपने उपन्यासों में उन्होंने दिखाया है मुख्यतः नैतिक नियमों के पालन की ज़िम्मेदारी स्त्रियों पर निर्भर है। यदि एक स्त्री को पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी है तो उसे सबसे पहले नैतिकता के बंधन से मुक्त होना होगा। समाज में सब के लिए बनाये गए जो नैतिक मूल्य-मान्यतायें हैं उसका पालन करते हुए कपटी नैतिकतावादियों के सामने अपना सख्त प्रतिरोध जाहिर करते हुए स्त्री को आगे बढ़ना है ।

भारत के संदर्भ में बतायेंगे तो यहाँ स्त्री के लिए एक कट्टरपंथी नैतिक व्यवस्था का निर्माण किया गया है यह असल में पुरुषसत्तात्मक समाज का एक षड्यंत्र है। वे हमेशा स्त्री को अपनी पैर तले दबाके रखना चाहते हैं। इस षड्यंत्र का गहरी चोट स्त्रियों के जीवन पर पड़ता है।आज स्त्री वह गुडिया नहीं है जिसके साथ पुरुष अपना मनपसंद खिलवाड करें।आज की स्त्री इस गलत नैतिक व्यवस्था के आगे प्रश्नचिह्न लगाती है और दिखाती भी है कि असली नैतिक व्यवस्था क्या है। श्रीमती गीतांजलि श्री के उपन्यासों की स्त्री चरित्र इस बात का स्पष्ट सबूत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) प्रेमचंदोत्तर हिंदी-उपन्यास : नए नैतिक मूल्य, शशि गुप्ता पृ.8

2) जैनेन्द्र और नैतिकता, ज्योतिष जोशी पृ.55,56

3) नागपाश में स्त्री, गीताश्री पृ.108

4) स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार पृ. 168

5) स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार पृ. 168

6) माई, गीतांजलि श्री पृ.36

7) माई, गीतांजलि श्री पृ.37

8) माई, गीतांजलि श्री पृ.37

9) माई, गीतांजलि श्री पृ.72

10) माई, गीतांजलि श्री पृ.73,74

11) माई, गीतांजलि श्री पृ.79

12) तिरोहित, गीतांजलि श्री पृ.48

13) तिरोहित, गीतांजलि श्री पृ.119

14) रेत-समाधि, गीतांजलि श्री पृ.187

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

महाराजास कॉलेज, एर्णाकुलम, केरल

दया प्रकाश सिंहा के नाटकों में नारी चेतना

अश्वती चंद्रन

शोध सार : हिंदी नाटक साहित्य के प्रतिष्ठित नाटककार श्री दया प्रकाश सिन्हा ने अपने नाटकों में समाज में जो मूल्य विघटन हो रहा है उसका सार्थक वर्णन किया है। सम्राट अशोक, सीढ़ियाँ, साँझ- सबेरा, सादर- आपका, रक्त अभिषेक, इतिहास- चक्र, कथा एक कंस की जैसे नाटकों के ज़रिए कई प्रकार की मूल्य शोषण एवं विघटन की यथार्थ चित्रण किया है। मुगल शासन काल के भ्रष्टता एवं विलासी हुक्मराँ की दस्तान तथा आधुनिकता के नाम पर समाज में होने वाले मूल्य विचलन आदि के माध्यम से वर्तमान समाज के नारी शोषण का यथार्थ चित्रण करना नाटककार का लक्ष्य है।

बीज शब्दः दया प्रकाश सिन्हा के नाटकों में नारी शोषण एवं मूल्य विघटन।

प्रस्तावना : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। प्रकृति - पुरुष दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। मानव समाज को उन्नति की ओर ले जाने के लिए स्त्री - पुरुष दोनों का योगदान समान रूप से आवश्यक है। दोनों में से एक पक्ष कमज़ोर हो गया तो मानव समाज का विकास संभव नही होगा। स्त्री - पुरुष दोनों में मूल्यगत मानवीय वृत्तियाँ समान होती हैं। मगर दोनों के अनुभव एवं संस्कार अलग - अलग होते हैं। ज़िन्दगी में कुछ ऐसे अनुभव भी होते हैं जो केवल स्त्रियों को ही अनुभव करना पड़ता हैं। फिर भी सदियों से सिर्फ नारी को ही कमज़ोर मानकर शोषण का शिकार बनाया गया है। हम स्त्री के लाचार, असहाय, विवश, दमित आदि रूप देख सकते हैं।

समाज में स्त्री का स्वतंत्र अस्तित्व धीरे - धीरे समाप्त होने लगा। वह साम्राज्ञी से आश्रिता बन गई। बहु विवाह प्रथा प्रचलित होने से नारी को केवल उपभोग की वस्तु मात्र समझा गया। यद्यपि नारी परिवार की आधारशिला है, परिवार की समृध्दि और गौरव उसी के कारण संभव है। वह माता, पत्नि, पुत्री, बहन जैसी रूप में पूजनीय है। किंतु पुरुष की नज़र में उसका महत्व तब तक है जब तक वह पुरुष के अंतराल की प्यास बुझा सके। नारी को केवल भोग्य की वस्तु समझी जाने लगी। नारी की इसी स्थिति का चित्रण दया प्रकाश सिंहा ने अपने नाटकों में अत्यंत मार्मिक ढ़ंग से किया है। मौर्यकालीन स्त्री दशा का प्रतिनिधित्व करने वाला नाटक है सम्राट अशोक। नाटक में अशोक सम्राट अपनी बेटी की आयू वाला वैध्य तिष्यरक्षिता के रूप सौंदर्य पर मुग्ध होकर उससे प्रणय निवेदन करके अपने मनोकामना को पूरा करना चाहता है। पर जब तिष्यरक्षिता ऐसा करने से मना कर देती है तो वह अपना अपमान समझकर उसे मृत्यु दंड देते हुए कहता है कि “हम चाहते हैं तुम्हारा समर्पण, यह हमारा आदेश है अब तक तुमने कामाशोक देखा है। हम चण्डाशोक भी है। हमारा प्रचंड क्रोध बहुत भयंकर है। हम तुम्हें मृत्यु दंड भी दे सकते हैं; आग में भी जलवा सकते है।”[1] धन लिप्सा के कारण दांपत्य जीवन में जो विघटन होता है वे भी नारी शोषण का बहुत बड़ा कारण होता है। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ती के लिए घर के प्रति या अपनी पत्नि के प्रति जो उत्तरदायित्व है उसे भूलकर उनका परित्याग तक करने के लिए पुरुष समाज तैयार हो जाता है। इस पुरुष समाज के प्रतिनिधि के रूप में सम्राट अशोक का चित्रण यहाँ व्यक्त किया है। अशोक और उसकी पत्नी देवी का दांपत्य जीवन तब तक सुखद था जब तक अशोक को सिंहासन के प्रति मोह था। वह अपनी इच्छा पूर्ती के लिए अपने परिवार का त्याग करने से भी नहीं हिचकिचाता। पत्नि द्वारा समझाने पर भी वह अपने निर्णय पर ही टिका रहता है कि “हम इसपर विवाद नहीं चाहते हैं।

केवल तुमको बताना चाहते हैं कि हम पाटलिपुत्र जा रहे हैं।"[2]

मुगल राज्य के आरंभिक शासकों के शासन के पश्चात तो नारियों की अवस्था और भी बुरी हो गयी। सामाजिक बंधनों के जाल में फँसकर उसे स्वयं अपना अस्तित्व की पहचान ही समाप्त हो गयी। लडकियों की शिक्षा न के बराबर होने लगी। पर्दा प्रथा, सति प्रथा, विधवा विवाह जैसे कुप्रथाओं का प्रभाव बढ्ने लगा। नारी जीवन घर की चारदिवारी तक ही सीमित हो गया। मुगल साम्राज्य का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने वाला नाटक है सीढ़ियाँ। प्रस्तुत नाटक में बानो, अमीरन और कोतवाल की बहन नारी शोषण का शिकार होती है। नाटक की प्रमुख नारी पात्र है अमीरन जो सोलह वर्ष की है। जब अमीरन उत्सुकतावश बादशाह की सवारी देखने जाती है तब बादशाह अमीरन के रूप सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसे दुल्हन बना कर हरम ले आया। अनेक बार उसे दुल्हन के रूप में सवार कर बादशाह के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है पर नशे में मस्त बादशाह उसको छुआ तक नहीं। इस प्रकार बादशाह द्वारा न अपनाने की स्थिति में उसे सारी उम्र हरम की बंदी बनाकर रख दिया जाता है। इसी प्रकार बानो का पति सलीम बानो को केवल उपभोग की वस्तु समझकर अपनी इच्छाओं की पूर्ती करने के लिए बानो को दांव पर लगाने से भी नहीं झिझकता। सलीम अपने पद की उन्नति के लिए उसे दूसरों के समक्ष भोग के लिए प्रस्तुत भी करता है।

वर्तमान समाज में नारी चाहे गृहणी हो या कामकाजी दोनों को उपेक्षा का शिकार बनना पड़ता हैं। एक ओर नारी सामाजिक बलात्कार की शिकार होती है तो दूसरी ओर दहेज के नाम पर जला दी जाती है। दहेज कम होने के कारण नारी और उसके परिवार को कई प्रकार के अपमान का सामना करना पडता है। सिन्हा जी का एक समकालीन नाटक है साँझ - सबेरा। इस में नाटककार मध्यवर्गीय परिवार की पुत्री शोभना का विवाह दहेज न देने के कारण रुक जाने का चित्रण प्रस्तुत करती है। जब शोभना के पिता शीतला प्रसाद लड़के वालों से माँगी हुई अवधी में भी दहेज का प्रबंध नहीं कर पाते तो शोभना स्वयं अपने परिवार की बोझ समझकर आत्महत्या करने का प्रयास करती है। आज के समाज में महानगर हो या गाँव, हर जगह पर लड़कियों के साथ छेड़छाड करना, अकारण पीछा करना, शारीरिक- मानसिक रूप में क्रूरता करना आदि साधारण विषय बन गया है। केवल बाहर ही नहीं अपने घर वालों से भी नारी सुरक्षित नहीं है। सादर आपका नाटक में ब्रह्मानंद का मित्र गोपालकृष्ण उसकी युवा पुत्री रेखा पर कामुक दृष्टि रखता है। रेखा घर पर अकेली होने पर वह रेखा को छेड़ता है।

समकालीन युग में दांपत्य जीवन में धन के नाम पर बड़ा परिवर्तन आ चुका है। धन लोलुपता से प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य को भी भूल चुका है। आज न जाने कितने पुरुष अपनी स्वार्थता तथा पदोन्नति के लिए अपनी ही जीवन संगनी को अन्य पुरुषों से अनैतिक संबंध रखने के लिए मज़बूर करते हैं। बदलते समाज में हर एक को धन ही सबसे बड़ा होता है। उनका जीवन मूल्य धन पर आश्रित है। इसका सशक्त चित्रण नाटककार ने रक्त अभिषेक में किया है। प्रस्तुत नाटक में टाइटस अपनी राजनैतिक स्वार्थता एवं महत्वाकांक्षा की पूर्ती के लिए अपनी पत्नि को सम्राट बृहद्रथ से शारीरिक संबंध जोड़ने के लिए कहते है कि राजा की कमज़ोरी है खूबसूरती। कोई भी खूबसूरत औरत उसे अपने हुस्न के जाल में फंसा सकती है। और तुमसे ज़्यादा खूबसूरत बला मैंने दूसरी नहीं देखी।"[3] मानसिक यातना एक स्त्री के लिए अत्यधिक कष्टदायक होती है जो उसे पूर्ण रूप से तोड़ता है। आज समाज में व्यापक रूप से पुरुष द्वारा नारी के प्रति पशु जैसा व्यवहार करते है और अभिशाप एवं बुरे शब्दों से नारी जीवन नरक जैसा बना देता है। जीवन की इस यथार्थता का चित्रण नाटककार ने इतिहास- चक्र में किया है। बाबु की पत्नी जो उसे आदर एवं प्रेम करती है बाबु इसके

बदले बुरे शब्दों से अपनी पत्नी के मन को तोडता है। बाबु द्वारा घूस और बेइमानी से कमाए रुपयों पर पत्नि का विरोध होने पर उसे घर से निकालता है और कहते हैं कि "हरामी की पिल्ली, खोपडी फोड़ दूँगा। बेइमानी का पैसा। तू तो जैसे मन्दिर की देवी है।..... निकल जा मेरे घर से 'निकल', 'निकल'।[4] किंतु इस प्रकार का व्यवहार होने पर भी वह अपने पति से आदर का भाव रखकर परिवार को बनाए रखना अपना कर्तव्य समझती है।

मानव जीवन में प्रेम और यौन संबंध दोनों का विशेष महत्व है। पाश्चात्य संस्कृति के कारण आज समाज में कई प्रकार के अवैध संबंध बढ़ता जा रहा है। नाटककार सिंहा जी ने 'कथा एक कंस की' नाटक में द्वापर काल के स्वतंत्र यौन संबंध का चित्रण करके वर्तमान युग की इस जीवन शैली की ओर इशारा किया है। नाटक में स्वाति अपनी प्रेमी कंस के साथ न केवल घंटों तक समय व्यतीत करती है बल्कि उसके समक्ष संपूर्ण रूप से समर्पित भी कर देती है। नाटककार के अनुसार "वह एक साधारण यादव कन्या है जो केवल प्रेम कर सकती है, और प्रेम का प्रतिदान दे सकती है।... उसका प्रेम सहज, स्वाभाविक और निश्छल है। उसका प्रेम केवल देना जानता है, माँगना नहीं। तब ही तो स्वेच्छाचारी, निरंकुश शासक भी, जो उसे अपनी चाल के लिए मोहरे के समान उपयोग करता है, उसकी मृत्यु पर फफक कर रो उठता है।"[5] अपनी प्रेम के लिए उसे अपने जीवन को खो देना पड़ता है। यहाँ कंस और देवकी की भाई - बहन संबंध में हुए विघटन के माध्यम से भी नारी शोषण की झलक दिखाई देती है। भारतीय समाज में बहन घर की लक्ष्मी होती है और भाई उसका रक्षा कवच है जो उसे संसार की बुरी दृष्टि से बचाता है। नाटक में देवकी, कंस के लिए इतना प्रिय था कि वे अपनी बहन की हर एक इच्छा को साकार करने में सक्षम था। लेकिन उसकी आठवीं संतान के द्वारा मार जाने की भविष्यवाणी सुनकर कंस भयभीत हो जाता है। वह अपनी ही बहन और उसके पति को कारागार में बन्दि बना देता है। देवकी के बच्चों की हत्या करके कंस ने यहँ एक माँ और एक बहन का शोषण करता है।

निष्कर्ष : समाज में नारी की जो अवस्था है उसका जीवन्त चित्रण यहाँ मिलता है। इस प्रकार दया प्रकाश सिंहा ने अपने नाटकों में एक ओर तो नारी शोषण के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है तो दूसरी ओर यौन संबंध का। पौराणिक एवं ऐतिहासिक धरातल से संबंधित होते हुए भी दया जी के नाटक वर्तमान समाज की समस्याएँ अंकित करने में सक्षम हैं।

संदर्भ सूची

1. सम्राट अशोक - दया प्रकाश सिंहा - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- चतुर्थ संस्करण 2019 पृ :79
2. सम्राट अशोक - दया प्रकाश सिंहा - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- चतुर्थ संस्करण 2019 पृ :42
3. रक्त अभिषेक - दया प्रकाश सिंहा - अनिल प्रकाशन, नई दिल्ली 2022 पृ :32
4. इतिहास चक्र - दया प्रकाश सिंहा - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- पृ :40 41
5. कथा एक कंस की - दया प्रकाश सिंहा - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण 2008- पृ 13 14

शोध निर्देशिका :
प्रो (डॉ) मंजु ए
विभागाध्यक्षा, हिंदी विभाग
श्रीनारायणा वनिता कॉलेज, कोल्लम

शोध छात्रा
श्री नारायणा वनिता कॉलेज
कोल्लम, केरल

समकालीन स्त्री कविता और सामाजिक स्तर पर नारी मुक्ति के विविध आयाम : कवि कात्यायनी के विशिष्ट संदर्भ में

विजयलक्ष्मी वी /डॉ नवीना जे नरितूक्किल

हिन्दी कविता की परंपरा हजार बारह सौ वर्षों की है। प्राचीन युग से लेकर इक्कीसवीं सदी तक इस कविता ने अनेक मोड लिये। अनेक समस्याओं का सामना किया। मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा था, ' कविता कभी खत्म नहीं होती'। कविता शब्द से ही समष्टि का बोध होता है। कविता मानव मन के अचेतन से उठाकर सर्वोच्च सर्वांग चेतन एवं सुन्दर बनाने का काम करती है।अपनी संवेदनाएँ दूसरों से संप्रेषण करने के लिए कविता ज्यादा सक्षम होती है। कुछ शब्दों में असीम अर्थ को समेटकर पाठक के मन को झकझोरने का कार्य करती है। समकालीन कविता विविध विमर्शों का निर्वाह कर रही है। यह कविता सदियों से उपेक्षित रहे स्त्री, दलित,और परिस्थिति को केंद्र में रखकर उनकी पीड़ा, दुख, दर्द को वाणी दे रही है। इक्कीसवीं सदी में इन उपेक्षितों की समस्या ने विश्व समस्या का रूप ले लिया, उनको न्याय दिलाने के लिए विश्वभर में आंदोलन होने लगे।

एक सराहनीय बात यह है कि समकालीन हिन्दी कविता आज इन उपेक्षित घटकों के साथ खड़ी है। उत्तर संरचनावाद ,उत्तर आधुनिकतावाद और नवउपनिवेशवाद ने समाज और मनुष्य को देखने की दृष्टि को बदल दिया। उत्तर औपनिवेशिक कई क्षेत्रों में नए संवादों के लिए जगहें मिलीं । इनमें स्त्री ,दलित और पारिस्थितिकी विशेष उल्लेखनीय है। सदियों से गुलामी और उत्पीडन की शिकार बनी स्त्री को सामंतवादी मूल्यों और मान-मर्यादाओं के पर्दे से बाहर आने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने का साहस इन तत्त्वों ने प्रदान किया।

हिंदी कविता के क्षेत्र में अनेक कवियत्रियाँ उभर आईं जिन्होंने उपर्युक्त मुद्दों को अपनी कविताओं के द्वारा समाज के सामने निर्भीक होकर रख दिया कात्यायनी,अनामिका.सुशीला टाकभौरे ,निर्मला पुतुल आदि इनमें अग्रणी हैं।

कवि कात्यायनी का कहना हैः- "कविता जो स्वयं मानवीय ज़रूरत रही है, मानवीय ज़रूरतों की तड़प पैदा करती हुई, वह प्रकृति से वर्चस्व-विरोधी होती है और एक औज़ार भी होती है राज्य के रहस्य को भेदने-समझने का, जैसे कि जीवन के तमाम भेदों को जानने-समझने का।"[1] इस तरह से देखा जाए तो कात्यायनी ऐसी एक कवयित्री है जो अपनी रचनाओं द्वारा मानवता के लिए, सारी उत्पीड़न के लिए सत्ता के विरुद्ध आवाज उठाने को प्रेरित करती रहती है। उन्होंने कहीं भी स्त्री की कमज़ोरी या दयनीय स्थिति का चित्रण नहीं किया है वरन चुप्पी तोड़ने का आह्वान करती है। उनका लक्ष्य सारे उत्पीड़न, चाहे वह स्त्री हो, प्रकृति हो इसके बारे में सचेत कराना और लड़ने की ताकत देना है। उनका सोच-विचार सर्वहारा को मानसिक गुलामी से मुक्त कराना और पितृसत्तात्मक मानसिकता को बदलना है। कात्यायनी की रचनाशीलता को हमेशा व्यक्तिगत के 'सामाजिक' होने से जोडकर देखा गया है।

कात्यायनी मानती हैं कि'औरत का यौन शोषण मात्र इसलिए नहीं होता कि वह औरत है। यह इसलिए सम्भव हो सका है कि उसकी सामाजिक हैसियत घर-बाहर - सर्वत्र दूसरे दर्जे के नागरिक की है और इस सामाजिक हैसियत का ताल्लुक उसके आर्थिक शोषण से है। औरत का श्रम पूरी दुनिया में मर्द के श्रम से सस्ता है। घर के भीतर की स्थिति भी यही है। साथ ही गुलामों की फौज की तरह औरतों की भारी आबादी आज भी अनुत्पादक श्रम में लगी हुई है।"[2] यही कारण है कि पूँजीवाद की ताकत से स्त्री घर की चारदीवारी से बाहर आकर, निकृष्टतम श्रेणी की गुलामी को तोड़ने के लिए सक्रिय रह गई हैं। कात्यायनी की कविताओं में जो क्रांतिकारी वामपंथी विचारधारा और सामाजिक नारीवादी की छवियां हैं, वे उन्हें पारिस्थितिक नारीवाद से भी जोड़ती हैं। उनकी मातृत्व की संकल्पना भी पारिस्थितिक नारीवाद का हिस्सा है। कात्यायनी ने नारी की उर्वरता ,मातृत्व और वात्सल्य के गुणों का भी अपनी रचनाओं में उल्लेख किया है, यह उनका भावनात्मक संबंध ही है जो प्रकृति के साथ संतुलित जीवन पद्धति प्रस्तुत करता है।

कात्यायनी ऐसी एक कवयित्री है जिसने पहले काव्य संग्रह के साथ ही हिंदी साहित्य के नारी विमर्श के क्षेत्र में एक सशक्तअभिव्यक्ति की है। उनका पहला काव्य संग्रह 'सात भाईयों के बीच चंपा' की शीर्षस्थ कविता है 'सात भाईयों के बीच चंपा'। इस में स्त्री जीवन की त्रासदी का उद्घाटन है। कात्यायनी अपने समय के विसंगतियों के सही पहचान उनकी कविताएँ द्वारा प्रस्तुत करने में सक्षम रही है। प्रस्तुत कविता में चंपा पुरुष प्रधान समाज की चक्की में दैहिक, मानसिक एवं शारीरिक रूप से पिसती संपूर्ण स्त्री जाति को प्रतिनिधित्व करती है। स्त्री विमर्श की पहली शर्त है, व्यक्तिके रूप में स्त्री की पहचान। स्त्री मुक्ति की जब हम बात करते हैं तो औरत की मानसिक ज़डताओं से मुक्ति की बात होती है। उन बंधनों से, उन बेडियों से मुक्ति जो औरत को सदियों से झेलनी पड़ी है। सात भाईयों के बीच चंपा उसी पुरुष मानसिकता की कहानी कहनेवाली कविता है। दूसरी ओर पारिस्थितिक नारीविमर्श की दृष्टि में देखा जाए तो 'चंपा' हरेक परिवार में नारी की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है जिसे जन्म से लेकर कई तरह के शोषण-दमन, झेलनी पड़ी, य़हाँ चंपा नारी का शोषण और प्रतिशोध यानी विद्रोह के रूप को धारण करके हमारे सामने आती है। कात्यायनी की रचना तंत्र की विशिष्टता उसकी मजबूत वैचारिकता और विवेकशील चयन में है। पारिस्थितिक नारी विमर्श कात्यानी की कविता के विकास क्रम में संवेदना के अनेक स्तरों से गुज़रती हुई अपनी संश्लिष्टता अर्जन करती है। उनकी कविता में कभी-कभी स्त्री प्रकृति में और प्रकृति स्त्री में तब्दील होती है। 'सात भाइयों के बीच चंपा ' में चंपा स्वयं प्रकृति का प्रतिरूप ही है।

"रात को बारिश हुई उमड़कर।/अगले ही दिन हर दरवाज़े के बाहर /नागफनी के बीहड़ घेरों के बीच/निर्भय-निस्संग चम्पा /मुस्कराती पायी गयी।"[3]

कात्यायनी ने अपनी कविता 'गुड़ की डली' में माँ की ममता और रुख का चित्रण, गुड़ की डली के लिए ज़िद करते बच्चे के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

"माँ के लाख इन्कार करने के बावजूद/ अड़ा हुआ है बच्चा/ अपनी अडिग हठ पर, जानता है,/ कहीं न कहीं आँचल में गाँठ / लगाकर या टोकरी के भीतर दुनियाभर से छिपाकर/ रखा ही होगा माँ ने/ गुड़ का एक छोटा-सा टुकड़ा उसके लिए।"[4]

यह बच्चे का अडिग विश्वास था कि अपनी माँ उसके लिए किसी भी मुसीबत में भी बनाए रख सकती है गुड़ की एक डली,यदि यह गायब हो जाते तो माँ अपनी ताकत से उसे ढूंढ निकालेंगी उसके लिए। स्त्री जीवन का कोमल पक्ष और सामजिक भावना इस कविता में ओतप्रोत हैं।

उनकी 'पण्डूक के युगल से' शीर्षक कविता नारी की देखभाल की प्रवृत्ति को पक्षी के ज़रिए चित्रित हैं- "आ! / आ, अपना घोंसला बना। /आने ही वाली हैं कठिन सदियाँ/ जल्दी से घोंसला बना। /आले पर, पंखें पर या मोखे में /जहाँ कहीं जी चाहे, /जा, देख-भाल कर ले तिनके चुन ले।/ मेहनत से, कौशल से, /हाथ बंटा आपस में।"[5]

आज की शिक्षित नारी को यह एहसास होने लगा है कि कुछ स्थापित मान्यताएँ, परंपराएँ, और व्यवस्था के ढाँचे निरर्थक हैं। इनमें बाँध रहे है तो वे उन्हें पुनराख्यायित कर अपनी अनुकूल स्थितियों में ढाल लेंगे। कत्यायनी की कविताओं में परंपरा को लेकर एक संवेदनशील आलोचनात्मक रवैया दिखाई देता है। 'त्रियाचरित्रं पुरुषस्य भाग्यम' शीर्षक कविता में उनकी प्रतिशोध का स्वर गूंजती है, वह कहती है: "त्रियाचरित्र नहीं जान सके गुरु / स्त्री को नहीं पहचान सके।/प्रेम का स्वाँग तो ताड़ गये/ पर प्रेम न पा सके गुरु।/तडपते रहे लगातार उसे पाने को।/ दीक्षा तो अधूरी रही मेरी/लेकिन प्रतिशोध पूरा हुआ।"[6]

उम्र के इस पडाव पर पारंपरिक खाँचे में बँधी जिंदगी जीने से नकारना, स्व-निर्णय लेना कात्यायनी की कविताओं में स्त्री चेतना की आहट दर्ज हैं। उनकी कविताओं में इन सड़ी गली मान्यताओं के प्रति विद्रोही स्वर भी सुनाई देता हैं। वह मानती है नारी संपूर्ण है, वह किसी पुरुष को यह अधिकार नहीं देतीं कि पुराने आरोपित मूल्यों को आधार बना वह स्त्री को उसी रूप में देखो, समझो ! स्त्री की अपनी स्वतंत्र सत्ता है। वह अपनी शर्त पर जीना सीख गयी है। वह पितृसत्तात्मक समाज द्वारा पैदा हुआ दुर्ग द्वार पर लगातर प्रहार करते उन्हें दरारें लगाने में सक्षम रही हैं। पूर्वाग्रह मंडित छवि को छोडकर उन्मुक्तउडान भरना चाहती है और उसकी यह बेचैनी कात्यनी की कविता में भी परिलक्षित होती है।

प्रेम जैसे कोमल भावों की आवश्यकता के बारे में अपनी एक शीर्षकविहीन कविता में आप कहती हैं :-

"एक अँधेरे समय में ही/ हम सयाने हुए, /प्यार किया,/ लड़ते रहे ताउम्र ।/हालाँकि अँधेरा फिर भी था/मगर हमारे जीने का/यही एक अन्दाज़ हो सकता था/फ़क्तिजब सिर्फ एक हो/कि दिल रोशन रहे।"[7]

कात्यायनी की कविताओं में हमें सामान्य व्यक्तिका संघर्ष, उसका द्वंद्व और भविष्य के बारे में उसका मधुर सपने - इन सभी का समावेश मिलता है और जीवन की गतिमयता के दर्शन भी होते हैं।आज की विध्वंसक समय में संपूर्ण समाज की संरचना जटिल होती जा रही है। युद्ध पुरुष वर्चस्व की मानसिकता पर आधारित कृत्य है। यह विध्वंस का प्रसार करते हैं। साथ ही साथ सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से पुरुष तंत्र को मजबूत बनाता है। पुरुष वर्चस्व के प्रतीक बने युद्ध ने स्त्री को दोयम दर्जा का स्थान दिया है। युद्ध में भाग लेते पुरुष किसी स्त्री का बेटा, पति और पिता होता है। युद्ध में उसका पुरुष नष्ट होने से इसका बुरा असर सीधे स्त्री पर पड़ता है। युद्ध की भीषणता चाहे वह महँगाई हो, गरीबी हो वह सब स्त्री के ऊपर आ जाती है।कवि कात्यायनी की वाणी में इसका दर्दनाक चित्र इस प्रकार हैः- "गन्दगी और समस्त मानवीय चीज़ों से घृणा का सैलाब-सा/गुज़र जाता है हमारे ऊपर से /और हम देखते हैं अपने चारों /ओर, सड़कों पर, गलियों में फैले, /मलबे में दबे जले-अधजले शरीर, बिखरे हुए मांस के लोथड़े, /गर्भवती स्त्री का पेट चीरकर निकाले गये शिशु की /छितराई बोटियाँ।"[8]

'इस पौरुषपूर्ण समय में' संग्रह की अनेक कवितायैं उस समय के हिंसा के ब्यौरे देती हैं। इन काविताओं की आक्रामक भावुकता मात्र वर्णन में अपनी मुक्ति नहीं तलाशती बल्कि अपने कवि साथियों को समय की वास्तविकता से टकराने के लिए बुलाती है, अपनी भूमिका निर्धारित करती है और तटस्थ होने का दिखावा करने वाले साहित्यकारों को कठघरे में खड़ा करती है। जिम्मेदारी से इसकी मुक्ति केवल प्रतीकात्मक विरोध की बहसों और चर्चाओं में नहीं होती, उस निर्णायक लड़ाई में वह खुद से सवाल करती है- "हम मानवता के शिल्पी, /हम जन-संस्कृति के सर्जक-सेनानी, /क्या कर रहे हैं इस समय?/ क्या हम कर रहे हैं आने वाले युद्ध की दृढनिश्चयी तैयारी?"[9]

इन कविताओं में 'रचना' को अपने समय और समाज की क्रूर कार्रवाइयों में सक्रिय हस्तक्षेप के रूप में शामिल किया गया है। जैसा कि कवयित्री ने स्वयं स्वीकार किया है, राजनीति उनके काव्य-कर्तव्य का स्वरूप है। वे अपनी पहचान को इससे जोड़ती हैं, लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि राजनीति यहाँ कविता की शर्तों पर शामिल है, नारे के रूप में नहीं। कात्यायनी ने लिखा है, अगर नारों या पर्चों की भाषा में लिखना है, तो वही लिखना चाहिए, कविता नहीं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो कात्यायनी की कविता अपनी क्रांतिधर्मी चेतना के कारण नारीविमर्श और पारिस्थितिक नारीविमर्श के एक अलग प्रतिमान उपस्थित करती हैं। गहरी सामाजिक प्रतिबद्धता व मानवीय पक्षधरता का सूक्ष्म सूत्र उनकी समस्त रचनाओं में पाया जाता है। कात्यायनी की कविताएँ अनेक स्तरों पर सामाजिक तिलिस्म को तोड़ती हैं। ये रचनाएँ सत्ता की दुरभिसंधियों के विरोध का काव्यात्मक अभियान हैं। सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में वे अपने समय और यथार्थ की जिस पहचान से रूबरू हुई हैं, उसके चक्रव्यूह को बेधकर नए मानवीय सामाजिक मूल्यों को अर्जित करने का संकल्प, तथा जीवन का यथार्थ उनकी कविताओं में एक साथ झलकता है।

सन्दर्भ सूची

1. कात्यायनी,कवी ने कहा पृष्ट :5
2. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक पृ:37
3. कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चंपा, पृ: 29
4. कात्यायनी, साथ भाइयों के बीच चम्पा, पृ:47
5. कात्यायनी, साथ भाइयों के बीच चम्पा, पृ:127
6. कात्ययनी, इस पौरुषपूर्ण समय में,पृ:61
7. कात्ययनी,जादू नहीं कविता पृष्ठ:40
8.इस पौरुषपूर्ण समय में पृ:161
9.राख अँधेरे की बारिश में,पृ:14

सह लेखक
डॉ.नवीना जे नरितूक्किल
असिस्टेंट प्रोफेसर ऑफ़ हिंदी
बी सी एम कॉलेज कोट्टयम

शोध छात्रा, हिंदी विभाग
सेंट थॉमस कॉलेज पाला, कोट्टयम

प्रो.जनार्दनन पिल्लैजी के जन्मशती समारोह में प्रो डी तंकप्पन नायर के द्वारा दिए गए वक्तव्य का सार संक्षेप

आज के इस कार्यक्रम में भाग लेने का जो अवसर मुझे प्राप्त हुआ उसे ज़रूर एक पूर्वजन्म साफ़ल्य (सुकृत) मानता हूँ। किशोर-कौमार वय में दो विशिष्ट व्यक्तियों का प्रभाव मुख्यतः मुझपर पड़ा है। वे हैं - प्रो जनार्दनन पिल्लैजी और वासुदेवन पिल्लैजी।

जनार्दनन पिल्लैजी के प्रति मेरे मन में आराधना भाव भरा था। डी एल रॉय के नाटकों (मेवाड़ पतन, चंद्रगुप्त) का अध्यापन करते वक्त आप स्वयं नाटक के कथापात्र बन जाते थे। वाग्देवता का वरदान सदा जनार्दनन सर पर विराजता था। बहुआयामी प्रतिभा से धनी एवं कर्मठ हिंदी सेवी रहे थे आप। कक्षाओं में गाँधीजी के सिद्धांतों को पढ़ाते समय वामपंथी पक्षघर (कम्यूनिस्ट) होने के बावजूद भी उनके मनन-चिंतन को मैंने आत्मसात किया था। एक बार मैंने उनसे कहा था - आपकी कक्षा में बैठ जाने पर भी मुझे मार्क्सवाद अधिक पसंद है।

आचार्य ने सहर्ष बयान दिया - 'आपको अपने विश्वास पर ही अचल रहना चाहिए। मगर उसे एक कैदखाने की दीवारों के भीतर की तरह न बनाकर रखिए। मन जब भी चाहें तो बाहर मुक्त होकर आइए। वर्षों बाद कॉलेज अध्यापकों के संगठन से प्रयोजित आंदोलनों में सक्रिय भाग लेते वक्त जनार्दनन पिल्लै जी के महत्त्व-वचन एक कैटलिस्ट/ प्रेरक तत्त्व समान मुझे लगता था। उन दिनों मैंने महसूस किया कि आचार्य जी के दृष्टिकोण सही, स्वस्थ एवं सार्थक हैं। 'कभी भी जीवन यात्रा में डरपोक न बनें। भीरुता का जीवन न जीएँ। ठोस कदम के निर्णय से; सही सोच से कभी मन को विचलित न करें' - उनके ये विचार पक्के रहे हैं। मुसीबतों में शक्ति एवं प्रेरणा देकर मनुष्य को ढ़लते रहने का प्रयत्न तो उन्होंने जीवन भर किया है। अनुवाद पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों को उनका जीवन सचमुच अनुकरणीय नाम-निशान है।

मिट्टी की धूलि के समान रही मेरी अपनी ज़िंदगी को कार्य-क्षेत्र में स्वर्ण-धूलि में संक्रमित कर देने का श्रेय जनार्दनन पिल्लैजी को मैं देता हूँ। छात्रों को किस प्रकार ढ़ाल दें, रूपांतरित कर दें - इसका मार्ग व साधन कार्य इन्होंने ही मुझे सिखाया। कभी भी उपेक्षा की मनोभावना दिखाई नहीं।

आदर्श अनुवादक, आदर्श गृहस्थ, आदर्श पिता, भले मानस के कृषक तथा सादगी की शैली से संपन्न विशिष्ट कर्मयोगी रहे हैं आचार्य जनार्दनन पिल्लैजी। ज़िंदगी की घड़ी न जाने कब बंद होगी! अवसरों को हम न खो बैठें। अवसरों से हमें लाभ उठाना चाहिए। आचार्यवर की महती विरासत की उपलब्धि हैं - डॉ (प्रो) जे रामचंद्रन नायर और डॉ (प्रो) एस तंकमणि अम्मा!

प्रस्तुति : सुचेता के नायर

आत्मकथा

देवयानम्

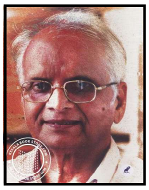

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

चौदहवाँ देवपद - कलालोक

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

केरल की कलाओं के बारे में अनुसंधान और गहरे अध्ययन के लिए एक अच्छे खासे वाचनालय और अनुसंधान विभाग की ज़रूरत थी। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए मैंने एक नए मकान का निर्माण करवाया था। अध्यापन के लिए आवश्यक नए कमरे (कळरी) भी बनवाए गए। नित्य तडके क्(बड़े सबेरे) पाँच बजे से पढ़ाई शुरू की जीती थी। विश्वविद्यालय से जब छुट्टी मिलती थी तब तिरुवनंतपुरम से तृश्शूर तक की लंबी यात्रा कर कलामण्डलम का दायित्व मैंने बड़ी सफलतापूर्वक निभाया था। उन दिनों विदेशों से भी हमें निमंत्रण मिलता था और कलामण्डलम के कलाकारों ने अनेक विदेश राज्य के विविध रंगमंच पर हमारी कलाओं का; विशेष कर कथकली को प्रस्तुत किए थे। विश्व-भर में इसका इतना यश फैल गया था कि संसार के कोने-कोने से कई विद्यार्थी-विद्यार्थिनियाँ कथकली और मोहिनियाट्टम सीखने यहाँ आए थे।

कलामण्डलम के कूटियाट्टम का विभाग उच्च स्तर का हो जाय- इसके लिए केंद्र संगीत नाटक अकादमी की सहायता पाने के लिए मैंने कुछ प्रयत्न किया था। अकादमी के प्रतिनिधि के रूप में श्रीमती उषा मालिक और डॉ प्रेमलता शर्मा को कलामण्डलम में आमंत्रित कर मैंने उनके साथ इस विषय पर चर्चा की थी। तिरुवनंतपुरम की कलात्मक संस्था 'मार्गी' का स्थापक श्री डी अप्पुक्कुट्टन नायर भी हमारे साथ था। इसके फलस्वरूप दिल्ली में केंद्र संगीत नाटक अकादमी के तत्त्वावधान में दस दिन का कूटियाट्टम महोत्सव संपन्न हुआ था। इस क्षेत्र के सभी सुप्रसिद्ध कलाकारों ने केरल से दिल्ली जाकर उस समारोह में भाग लिया था। वे थे पंडित श्री के पी नारायण पिषारडि, श्री एल एस राजगोपाल, श्री किल्लिमंगलम वासुदेवन नंपूतिरी, श्री डी अप्पुक्कुट्टन नायर, श्री अय्यप्पा पणिक्कर, डॉ कपिला वात्स्यायन, डॉ प्रेमलता शर्मा तथा संगीत नाटक अकादमी के सचिव श्री जयंत कस्व्वार की महत्वपूर्ण उपस्थिति भी विशेष उल्लेखनीय है। कूडियाट्टम नामक केरल की इस प्राचीन सर्वोत्तम कला के प्रचार-प्रसार के लिए कलामण्डलम के योगदान के बारे में मैंने एक लेख लिखा था जो 'संगीत नाटक' मासिक के विशेषांक में प्रकाशित किया गया था। कूटियाट्टम के महान कलाकार एवं पंडित श्री माणी माधव चाक्यार द्वारा रचित 'नाट्यकल्पद्रुमम' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ का हिंदी में भाषांतरण उनके पुत्र श्री के पी जी नंपियार ने किया था। केंद्र संगीत नाटक अकादमी ने उस ग्रंथ का प्रकाशन किया था जिसका आमुख मैंने लिखा है। इस समारोह का बड़े दूरव्यापी प्रभाव यह हुआ कि डॉ सुधा गोपालकृष्ण आदि के प्रयत्न से युनेस्को ने कूटियाट्टम नामक इस केरलीय कला को 'पैतृक कला' की स्वीकृति दे दी।

कलामंडलम के जनसंपर्क विभाग के (Public Relations Officer) अधिकारी श्रीमती लीला नंपूतिरप्पाड, (सुमंगला) ने 'आज के कलाकार' नामक एक निर्देशक पुस्तक (Directory) तैयार किया

था। उसका मैंने संशोधन कर प्रकाशित किया था। इतना ही नहीं; एक स्मारिका (souvaneer) भी मैंने प्रकाशित किया था।

केरल कलामण्डलम के अध्यक्ष के पद पर बैठकर मैंने अपनी इस संस्था को उत्तरोत्तर प्रगतिशील करने के लिए कठिन मेहनत की थी। इसके लिए सरकार की ओर से हमेशा मुझे सहायता भी मिली थी। केरल की श्रेष्ठ कलाओं की इस परम प्रधान एवं विश्व भर में विख्यात संस्था को विश्वविद्यालय के उन्नत पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी मैंने किया था; लेकिन मेरा वह स्वप्न सफल न हो सका। उसी प्रकार कलामण्डलम के दैनिक का प्रकाशन भी चाहते हुए भी मैं न कर सका। कथकली के आदरणीय गुरु कलामण्डलम श्री पद्मनाभन नायर के द्वारा रचित "कथकली चेल्लीयाट्टम" (कथकली पढ़ाना) नामक अमूल्य ग्रंथ का प्रकाशन भी मैं न कर सका। दिल्ली के इंदिरा गाँधी नाशनल सेंटर फॉर दि आर्ट्स (Indira Gadhi National Centre for the Arts - IGNCA)) की सहायता से इस महत्वपूर्ण बृहद ग्रंथ का प्रकाशन संभव हो सकता था। परंतु पुस्तक-बिक्री के लाभांश (Royalty) से लेखक सहमत नहीं था। प्रयत्न करने पर भी जो कुछ न कर सका; इसके लिए मुझे दुख अवश्य है; लेकिन जितना मैं कर सका उतने से अवश्य संतुष्ट हूँ। तीन साल तक देश की इस सर्वश्रेष्ठ संस्था के उच्च पद का दायित्व निभाते हुए जो कुछ मैंने किया था वे सब सार्थक और सफल सिद्ध हुए। मुझे हार्दिक पीड़ा केवल इस बात पर हुई थी कि कलामण्डलम के अगले अध्यक्ष की नियुक्ति की बात मुझे समाचार पत्रों ने बताया था। हालाँकि उसके पिछले दिन शाम के किसी योग में आदरणीय मंत्री के साथ अपनी मुलाकात हुई थी। कारण शायद यह होगा कि पहले की सरकार किसी राजनैतिक संघर्ष से गिर गई थी और अगले चुनाव में विपक्ष के लोगों के हाथों शासन का डोर मिला। सामान्यतया यही देखी जाती है कि जब नई सरकार शासन में आती है तब वह विभिन्न अकादमियों के अध्यक्ष, सचिव आदि को ही नहीं बल्कि सभी अंगों को भी उनके पद से हटा देती है और उनके स्थान पर अपने प्रिय लोगों की नियुक्ति कर देती है।

केरल कलामण्डलम के नए अध्यक्ष प्रोफसर श्री ओ एन वी कुरुप्पु ने अधिकार लेते ही पत्रकारों के परिषद में मुझ पर यह इलजाम लड़ाते हुए कहा कि कलामण्डलम के पूर्व अध्यक्ष अपना मानदेय (Honorarium) स्वीकार करते थे, परंतु मैं ऐसा नहीं करूँगा। यह सुनकर पत्रकारों को मैंने व्यक्त कर दिया कि कलामण्डलम की सेवा मेरे लिए बड़े गर्व की बात थी। वेतन या मानदेय के रूप में एक भी पैसे कभी मैंने नहीं ली है। महीनों बाद सरकार की ओर से मेरे मानदेय की अनुमति का आदेश मुझे मिला; पर मैंने यह स्वीकार नहीं किया। बाद में बहुत से अनुरोध किए जाने पर मैंने उत्तर दिया कि अपना वह पैसा केरल कलामण्डलम के सचिव के नाम पर बैंक में निक्षिप्त किया जाय और हर साल उसका सूद "डॉ वी एस शर्मा एन्डोवमेंट अवार्ड" के रूप में किसी एक योग्य कलाकार को दिया जाय जो कूटियाट्टम, कथकली, मोहिनियाट्टम या ओट्टन तुल्लल में निपुण निकले। गलत इलज़ाम लगाकर मुझे समाज के सामने कलंकित करनेवाले उस व्यक्ति को मैंने कभी माफी नहीं दी। उनकी कविताएँ मुझे पसंद हैं। उनके कृतित्व का ; याने कविता, फिल्मी गीत, नाटक-गीत इत्यादि का आस्वादन मैं अवश्य करता हूँ। परंतु उनका व्यक्तित्व मेरे लिए कभी स्पृगणीय नहीं है। हमेशा उनके साथ 'दुख परिवर्जयेत्' का न्याय ही मैंने स्वीकार कर लिया था।

(क्रमशः)

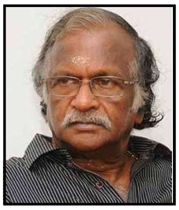

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी **अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार**

ऐसे एक शीतयुद्धकाल में ही परिवार का बँटवारा हुआ था। इस समय मेरी माँ की उम्र सिर्फ ग्यारह साल थी। तभी माँ की सबसे बड़ी बहन रूपी कार्त्यायनिक्कुट्टी तंकच्ची के तीन बच्चों के जन्म हो चुके थे। चेल्लम्मा तंकच्ची, डॉ त्रिविक्रमन तंपी, भारगवी तंकच्ची। चेल्लम्मा तंकच्ची की एक बच्ची भी हुई। दस साल की उम्र में विवाहित होनेवाली लड़की तेरहवीं साल की उम्र में माँ बनेगी। मेरी दादी माँ और उनकी बड़ी बेटी के बीच सिर्फ तेरह साल का ही अंतर था। बड़ी माँ और उनकी बड़ी बेटी चेल्लम्मा तंकच्ची के बीच भी उसी प्रकार का ही अंतर था। आज ये सब अविश्वसनीय लग सकता है। लेकिन नियम के अंगीकार से ही सभी नायर घरों में (क्षत्रियों के घर में भी) उस काल में एक प्रकार से स्त्रीपीड़ा ही थी, ऐसा मुझे लगता है। उसी समय जायदाद के संबंध में स्त्री का स्थान पुरुष को नहीं था। जायदाद का विभाजन 'व्यक्ति के दर' रीति के अनुसार था। मरुमक्कात्तायं चालू रहनेवाले परिवारों में संतानों को जायदाद में समान हक था। लेकिन पुत्र को यह हक नहीं था। जायदाद का विभाजन आळोहरी (प्रति व्यक्ति का हिस्सा) की प्रथा पर था। मरुमक्कत्तायं के चलनेवाले परिवारों में बेटी को और बेटी की संतानों को भी जायदाद में समान रूप से हक था। लेकिन पुत्र को वह हक नहीं था। उदाहरण के लिए, एक घर में एक ही माता से जन्मे भाई-बहनों में, बड़ी बहन की चार संतानें हो तो माँ और संतानों को मिलाकर पाँच भाग मिलेगा। पर भाई को केवल उसका ही भाग मिलेगा। मेरी माँ और माँ की बड़ी बहन की बेटी भार्गवी तंकच्ची समान उम्र की थी; यह तो पहले ही कहा गया था। बँटवारा होने पर कार्त्यायनिकुट्टी तंकच्ची को बेटी और, बेटी की पुत्री भी थी। संक्षेप में मेरी बड़ी माँ को उनके बेटे और दो बेटियों एवं बेटी के संतानों को मिलाकर पाँच भाग!

कनिष्ट बडी माँ रूपी गौरिक्कुट्टी तंकच्ची को भी उस समय दो बच्चों का जन्म हो चुका था - ऋषिकेशन तंपी और दामोदरन तंपी। इस तरह उस बड़ी माँ को तीन भाग मिले। (ऋषिकेशन तंपी छोटी उम्र में ही मर गया।) ग्यारह वर्षीय माँ को सिर्फ एक ही भाग मिला था।

कलकत्ता में जाकर दंत वैद्य सीखनेवाले एवं कलाकार भी रहनेवाले मेरे अपने बड़े चाचा पद्मनाभन तंपी प्रगतिशील थे। इसलिए ही छोटी बहन रूपी भवानी की शादी उन्होंने दस वर्ष की उम्र में नहीं कराई थी।

पारिवारिक वकील रूपी कोच्चुपुरक्कल रामकृष्ण पणिक्कर ने बँढ़वारे के दस्तावेज़ तैयार करने का नेतृत्व किया। बड़ी माँ की बेटी का पति भी वकील था। गोरा एवं सुंदर नीलकंठापिल्लै। अपनी पत्नी एवं संतानों को और सास को जायदाद का

कीमती भाग मिलने का भरसक प्रयास उन्होंने किया। कनिष्ठ बड़ी माँ के लिए वकालत करने को उनके पति कुमारा पिल्लै थे। मेरी माँ की वकालत के लिए तब सिर्फ तिरपन वर्ष की आयु पार करनेवाली दादी माँ! उन्होंने "मेरी भवानी की बात..." ऐसा कहकर शुरु करते ही घर में अंबू नामक प्यारा उपनाम वाले डॉ. पद्मनाभन तंपी मना करते थे : "माँ चुप रहिए, उसके लिए मैं हूँ। भवानी, मेरे लिए बहन नहीं, बेटी है।"

शायद उन्होंने सोचा होगा कि वे दीर्घकाल तक जीवित रहेंगे और बहुत धन बटोर लेंगे एवं अपनी जायदाद का एक भाग छोटी बहन को देंगे। परिवार की निज जायदाद के रूप में तीन सौ एकड पुंचा खेत कुट्टनाडु में था।

इसके अलावा चात्तुतंपी परिवार के नाम में बदलकर 'ओट्टी' (लीस) में खरीदा गया कुछ एकड खेत भी था। लीस में खरीदा गया खेत ही माँ के भाग के रूप में उनके नाम पर दिया था। तब वकील एवं छोटी बेटी के पति नीलकंठा पिल्लै ने कहा - "मैं उन घरवालों को अच्छी तरह जानता हूँ। उनको इतना रुपया और सूद देकर लीस छुडाने की क्षमता नहीं है। यही नहीं; दस्तावेज में बताई गई अवधि भी बीत चुकी। अगर वे आए तो मुकद्दमा चलाने के लिए मैं हूँ न? भवानी तो मेरी साँस की बहन तो है न?" दादी माँ ने दुख के साथ प्रतापी बेटा अंबु को देखा। उन्होंने फिर से कहा - "माँ शांत होकर रहिए, भवानी के लिए मैं हूँ।"

इस तरह पुन्नूर परिवार का बँटवारा हुआ। माँ बालिग होने के कारण भाई पद्मनाभन तंपी की जायदाद और माँ की जायदाद एक साथ रख दिया गया। चाचाजी माँ के रक्षक बने।

बड़ा महल और पारिवारिक मंदिर का बँटवारा नहीं हुआ। वह परंपरागत रूप से प्राप्त विष चिकित्सा और आभिचार विद्या संभालकर, परिवार की कीर्ति बढ़ानेवाले परिवार के मुखिया का होता है। उनके कालांतर उस कार्य को संभालनेवाला भाँजा उस स्थान पर आ जाता है। इस तरह बड़े महल में बड़े चाचाजी कुमारन तंपी और ऊञ्ञाल मठ में उनका अपना छोटा भाई वेलायुधन तंपी रहने लगे। उनकी बहन अम्मुक्कुट्टी तंकच्ची अपने दूसरे प्रसव में मर गई थी। दादी माँ की सबसे छोटी बहन एवं अविवाहित कुट्टियम्मा नामक दादी जी द्वारा पाला-पोसा अम्मुक्कुट्टी की संतानें - पोन्नम्मा तंकच्ची और छोटा भाई कुंञंबी (कुंञ्ञुरामन तंपी) पुन्नूर खानदान के वारिस बने। संयुक्त परिवार नामक कैद से बचने से मेरे अपने चाचाजी रूपी पद्मनाभन तंपी जन नेता के रूप में बदल गए। आज के समान नारा लगाकर एवं बस पर पत्थर फेंककर और अध्यापकों पर आक्रमण करके आसानी से नेता बनना उस समय असंभव था। बसों का सडकों पर चलना शुरू नहीं हुआ था। राज शासन, उससे भी अधिक अंग्रेज़ों का आधिपत्य.... इसलिए नेता बनने के लिए एक ही मार्ग था। लोगों के बीच रुपया बाँटना। "तंपी महोदय ..." पुकारते हुए पैसा हडपने के लिए अनुचर लोग पीछा करेंगे। "तंपी महोदय कौन है.... इस देश का ईश्वर है न..." इस प्रकार कहते फिरेंगे। साढ़े छः फीट लंबे, गोरे एवं सुंदर पद्मनाभन तंपी के मन में अपने को आधा फीट ऊँचाई और महसूस होगी... छोटे भाई का आचरण ठीक नहीं है, ऐसा समझनेवाले परिवार मुखिया कुमारन तंपी ने साथ फिरनेवाले अनुचरों को छोड़ देने का उपदेश छोटे भाई को दिया।

(क्रमशः)

2009-10 आचार्य कोर्स के छात्रों के संगम के विविध दृश्य

आदर्श विद्यालय के प्राचार्य श्रीमती सीनत सेवा निवृत्त हो रही है।

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-05-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

MAY 2025

Vol. No. 62, Issue No.02
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

स्व.एम.के.वेलायुधन नायर का
अनुस्मरण सम्मेलन और उससे संबधित दृश्य

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित प्रो.डी.तंकप्पन नायर, डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair, Dr.M.S.Vinayachandran and Dr.Renjith Ravisailam